सुधा बीज बोने से पहले, कालकूट पीना होगा।
पहिन मौत का मुकट, विश्व-हित मानव को जीना होगा॥

सम्पादक—श्रीराम शर्मा

भाग २ | २० मार्च सन् १९४१ | अङ्क

अपने को पहचानो !

अपनी कठिनाइयाँ हमें पर्वत के समान दुर्भेद्य, सिंह के समान भयंकर और अन्धकार के समान डरावनी प्रतीत होती हैं, परन्तु यह सब यथार्थ में कुछ नहीं, केवल भ्रम की भावना मात्र हैं, इनसे डरने का कोई कारण नहीं। इस बात का शोक मत करो कि मुझे बार-बार असफल होना पड़ता है। परवाह मत करो, क्यों कि समय अनन्त है। बार-बार प्रयत्न करो और आगे की ओर कदम बढ़ाओ। निरन्तर कर्त्तव्य करते रहो, तुम्हारा एक-एक पग सफलता की ओर बढ़ रहा है, आज नहीं तो कल तुम सफल होकर रहोगे क्यों कि कर्त्तव्य का निश्चित परिणाम सफलता है।

सहायता के लिये दूसरों के सामने मत गिड़गिड़ाओ क्योंकि यथार्थ में किसी में भी इतनी शक्ति नहीं है जो तुम्हारी सहायता कर सके। किसी कष्ट के लिये दूसरों पर दोषारोपण मत करो, क्यों कि यथार्थ में कोई भी दूसरा तुम्हें दुख नहीं पहुँचा सकता। तुम स्वयं ही अपने मित्र हो और तुम स्वयं ही अपने शत्रु हो, जो कुछ भली बुरी स्थितियाँ सामने हैं वह तुम्हारी पैदा की हुई हैं। अपना दृष्टिकोण बदल दोगे तो दूसरे ही क्षण यह भय के भूत अन्तरिक्ष में तिरोहित हो जाँयगे।

मित्रो ! किसी से मत डरो। क्यों कि तुम तुच्छ जीव नहीं हो। अपनी ओर देखो, अपनी आत्मा की ओर देखो। मिमियाना छोड़ो और दहाड़ते हुए कहो 'सोऽहम्' 'मैं वह हूँ' जिसकी सत्ता से यह सब कुछ हो रहा है।

अखंड ज्योति के नियम

(१) अखण्ड-ज्योति का वार्षिक मूल्य १॥) और एक प्रति का ≈)। है। मूल्य मनीआर्डर से भेज चाहिए। वी० पी० मँगाने पर ।–) अधिक देने पड़ते हैं।

(२) उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकिट भेजना चाहिये अन्यथा उत्तर न दिया जायगा।

(३) नये ग्राहकों को जनवरी या जून से ही ग्राहक बनना चाहिये, बीच में ग्राहक बनने वालों के पिछले अङ्क भेज दिये जावेंगे। पिछले अङ्क न मँगा कर चालू मास से ही ग्राहक रहना पाठक की इच्छा प निर्भर है। जैसी रुचि हो लिख देना चाहिये।

(४) अखण्ड ज्योति के मूल्य में कमी करने के लिये पत्र व्यवहार करना व्यर्थ है। एक वर्ष से कम के लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते।

(५) अखण्ड ज्योति प्रति मास ठीक २० तारीख़ को निकल जाती है। अपने यहाँ से दो बा जाँच कर ग्राहकों के पास भेजा जाता है। परन्तु कभी-कभी डाकखाने की गड़बड़ी से अङ्क पाठकों को नह मिलते। ऐसी दशा में रुष्ट न होकर डाकखाने से पूछताछ करनी चाहिये और उसका उत्तर लिखते हुए अ दुबारा मँगा लेना चाहिये।

(६) स्वीकृत लेख सचित्र भी छापे जा सकेंगे, यदि लेखक ब्लाक भेज देंगे या उसका प्रबन्ध कर देंगे।

(७) पुस्तकों का मूल्य भी मनीआर्डर से भेजना चाहिये। वी० पी० मँगाने पर ।≡) अधिक दे पड़ेंगे। १) से कम मूल्य की पुस्तकों की वी० पी० नहीं भेजी जाती।

(७) पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

पत्र व्यवहार का पता—

मैनेजर—अखण्ड—ज्योति कार्यालय, मथुरा।

❋ विषय सूची ❋

मनुष्य को देवता बनाने का प्रयत्न !

यह पुस्तकें सच्चे रत्नों से भी अधिक मूल्यवान हैं।

जो ज्ञान युगों के प्रयत्न से मिलता है, उसे हम अनायास ही आपके सम्मुख उपस्थित करते हैं।

अखण्ड ज्योति परिवार में अब तक जो ज्ञान संपादन हुआ है, उसमें से सर्व साधारण में प्रचारित योग्य जितना उपयोगी है, उसे पुस्तकाकार में प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है। लड़ाई के कारण कागज आदि के दाम तीन गुने बढ़ गये हैं फिर भी पुस्तकों का मूल्य जहाँ तक हो सका है, कम ही रखा गया है। यह पुस्तकें बाजारू किताबें नहीं हैं, इनकी एक एक पंक्ति के पीछे गहरा अनुभव और अनसंधान है। विनम्र शब्दों में हमारा यह दावा है कि इतना खोज पूर्ण, अलभ्य, साहित्य इतने स्वल्प मूल्य में अन्यत्र कहीं भी नहीं मिल सकता। इनका छपना आरम्भ हो गया है। मू० हर एक पुस्तक का दो आना है।

आगामी चार महीनों के अन्दर प्रकाशित होजाने वाली पुस्तकें:—

(१) स्वास्थ्य और सुन्दर बनने की विद्या— (आध्यात्मिक सरल साधकों से तन्दुरुस्त और खूबसूरत बनने के उपाय)।

(२) मानवीय विद्युत के चमत्कार—(मनुष्य के शरीर में जो बिजली भरी हुई है, उसके द्वारा कैसे २ आश्चर्यजनक कार्य होते हैं, इसका विवरण है)

(३) स्वर योग से दिव्य ज्ञान—(स्वरोदय विद्या द्वारा गुप्त और भविष्य की बातों को जान लेना)

(४) बुद्धि बढ़ने के अद्भुत उपाय— (बुद्धि को तीव्र करने, स्मरण शक्ति बढ़ाने के उपाय)

(५) धनवान और विद्वान बनने के सिद्धान्त—

(५) वशी करण की सच्ची सिद्धि—(इस में बताये हुए सुगम और सच्चे उपायों से निश्चय ही दूसरों को अपने वश में किया जा सकता है)

(७) इच्छानुसार पुत्र या पुत्री उत्पन्न करना— (ऐसे उपाय बताये गये हैं जिनसे मन चाही सन्तान पैदा हो सकती है)

(८) भोग में योग— (शीघ्र पतन, स्वप्न दोष आदि विकारों को योग साधनों से दूर करने की शिक्षा)

(९) बिना कष्ट के प्रसव—(गर्भवती स्त्रियों के लिए कुछ अभ्यास जिन्हें करने पर प्रसव समय वेदना नहीं होती)

(१०) मरने के बाद हमारा क्या होता है ?— (मृत्यु के उपरान्त प्रेत होना, स्वर्ग नरक में जाना, जन्म लेना आदि की खोज पूर्ण चर्चा)

(११) क्या धर्म ? क्या अधर्म ?—(धर्म की दार्शनिकता और वैज्ञानिक दृष्टि से मीमांसा)

(१२) ईश्वर कहाँ है ? कौन है ? कैसा है ?— (ईश्वर का स्वरूप और उसकी उपासना)

इन बारहों पुस्तकों का मूल्य १२×।≈) =४।।) है। डाक व्यय हर पुस्तक पर –) लगेगा। इस प्रकार उन्हें ५।) देने पड़ेंगे और बार बार मूल्य भेजने का डाकव्यय लगेगा सो अलग। इसलिए जो सज्जन इन सब पुस्तकों का पूरा सैट मंगाना चाहें, वे ४) पेशगी भेज दें। इसी मूल्य में उन्हें यह सब पुस्तकें घर बैठें मिल जायेंगी।

४) पेशगी भेज कर स्थायी ग्राहक बनने वालों को काफी सुभीता होगा और उस पैसे से कागज आदि खरीने में हमें बड़ी सुविधा मिलेगी, इसके लिये हम उनके विशेष कृतज्ञ होंगे।

नोट—आज ही अपना मूल्य भेज दीजिये।

मैनेजर—अखण्ड ज्योति, मथुरा।

धन्यवाद !

अखण्ड ज्योति के ज्ञान प्रसार कार्य में सहयोग देना धर्म कर्त्तव्य समझ कर इस मास निम्न महानुभावों ने ग्राहक बढ़ाने का विशेष प्रयत्न किया है। इन सज्जनों के प्रति अखण्ड ज्योति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती है—

१—श्रीमती सावित्री देवी तिवारी, जयपुर।
२—खूबराम मुन्शीराम वैश्य, मोना मण्डी, हिसार।
३—श्री विपेन्द्रपाल राय रिटायर्ड जज, बंगलोर।
४—आचार्य विश्वैया, व्याम विद्यापीठ, क्वेटा।
५—कविराज सिद्धगोपाल श्रेष्ठ खिचापोखरी, नैपाल।
६—पं० द्वारका महाराज, नटाल, साउथ अफ्रीका।
७—पं० दयाराम शर्मा अ॰ क, पचमढ़ा।

अखण्ड ज्योति के कुछ अमूल्य रत्न

मनुष्य को देवता बनाने वाली यह पुस्तकें छपकर तैयार हैं।

१-मैं क्या हूं ?—यह पुस्तक आत्मा के अमरत्व और उसके वास्तविक स्वरूप का प्रत्यक्ष चित्र है। इसमें आत्मसाक्षात्कार के लिए कुछ सरल साधन बताये गये हैं, जिन्हें थोड़े समय में कर सकते हैं और अमर फल प्राप्त कर सकते हैं। मूल्य ।=) आना।

२-सूर्य चिकित्सा विज्ञान—सूर्य की प्रचंड रोग नाशक शक्ति से एक साधारण बुद्धि का आदमी कठिन से कठिन रोगों को अच्छा कर सकता है। इस विज्ञान को अनेक डाक्टरी खोजों के आधार पर लिखा गया है। मूल्य ।=)

३-प्राण चिकित्सा विज्ञान—मनुष्य के अन्दर गजब की विद्युत शक्ति है। इसका प्रयोग करके अपने और दूसरों के कष्टों को दूर किया जा सकता है। तंत्र चिकित्सा की प्राचीन पद्धति को यह पुस्तक वैज्ञानिक रूप से उपस्थित करती है। विदेशों में इस विधि से बड़े बड़े अस्पताल चलरहे हैं। मूल्य ।=)

४-पर काया प्रवेश—इस पुस्तक में मैस्मरेजम के ढंग पर कुछ ऐसे उपाय बताये गये हैं जिनके आधार पर मनुष्य दूसरे के शरीर में अपनी प्राण शक्ति को प्रवेश करके उसके विचारों में आश्चर्य जनक परिवर्तन करके उसे अपनी इच्छानुसार चलाने को मजबूर कर सकता है। मूल्य ।=)

वी० पी० मंगाने से ।≈) अधिक लगेंगे। इसलिये मूल्य मनीआर्डर से भेजिए। पुस्तकें सुरक्षित पहुंचाने के लिए)॥ का टिकट कम लगाते हैं, अस्तु वे -) की वैरंग होकर पहुँचेगी।

मैनेजर—अखंड-ज्योति कार्यालय, मथुरा।

सुधा बीज बोने से पहले, कालकूट पीना होगा ।
पहन मौत का मुकट, विश्व-हित मानव को जीना होगा ।

भाग २] २० मार्च सन् १९४१ [अंक ३

प्रार्थना

(पं० लक्ष्मीनारायणजी 'लक्ष्मनि' मैनपुरी)

(१)

प्रभु की इस रमणीय वाटिका, में बसन्त ऋतु आवे ।
पुण्य पूत वसुधा हो सारी, जो आवे, सुख पावे ॥
इस अरुणोदय की बेला में, नयन न को कोई मींचे—
शिव, शिव करता सुभ युगों का, यह मानव जग जावे ॥

(२)

अधः पतन के पथ पर कोई, व्यक्ति न कदम बढ़ावे ।
पाप-पंक में भ्रम वश कोई, अपना पग न फँसावे ॥
एक दुखी दूसरा सुखी यह, दुस्तर दुर्दशा छूटे ।
रोता आने वाला जब जावे, तब हँसता जावे ॥

(३)

भूले भटके पथ पर आवे, कर्म रेख पहिचानें ।
टुकड़ों पर ललचाने वाले, सब जग अपना मानें ॥
हे परमेश्वर ! जो नर नाहर भ्रम से भेड़ बने हैं ।
वे अपने स्वरूप को समझें, अपने को पहचानें ॥

सुधा बीज बोने से पहले, काल कूट पीना होगा।
पहिन मौनका मुकट, विश्व-हित मानवको जीना होगा॥

मथुरा, २० मार्च सन् १९४१

अभेद्य रक्षित दुर्ग

बड़े बड़े राजा नरेश अपने रहने के लिए किले बनवाते हैं। उनकी मजबूती पर पूरा ध्यान देते हैं ताकि कोई शत्रु उन पर हमला न कर सके और करे तो उस मजबूत किले की दीवारें उसे राजा तक न पहुंचने दें। जिसका किला जितना ही मजबूत होता है, वह अपने को उतना ही अजेय समझता है। अपनी रक्षा के निमित्त अन्य प्राणी भी निवास गृह बनाते हैं। बहुत से जीव भूमि में छेद करके बिल या गुफा बना लेते हैं और उसमें सुरक्षित रूप में निवास करते हैं। जब कोई विपरीत परिस्थिति सामने आती है तो दौड़ कर उस गुफा में चले जाते हैं। मनुष्य अपने को ऋतुओं के प्रभाव से तथा चोर, शत्रुओं के आक्रमण से बचने के लिए घर बार बना कर रहता है और रात्रि के समय जब भय की आशङ्का होती है, दरवाजे बन्द करके सोता है। ऐसा ही एक घर या किला आत्मा के पास भी है। उसके ऊपर यदि बुरे विचारों, दुर्गुणों, या रोग शोकों का आक्रमण हो तो इस में छिप कर अपनी पूरी तरह रक्षा कर सकता है।

यह पूर्णतः रक्षित और अभेद्य दुर्ग हमारा हृदय है, इसमें सदा अखण्ड शांति का साम्राज्य रहता है और सब प्रकार के विश्राम की व्यवस्था है। जब तुम्हारे ऊपर कोई आपत्ति आवे, किसी दुख में चिन्तातुर हो रहे हो और दुनियाँ में कहीं शांति प्राप्त न हो रही हो, तो अपनी हृदय गुफा में उतरो। किसी एकान्त स्थान में आँखें बन्द करके बैठो और अपने हृदय मंदिर में धीरे धीरे उतर जाओ। हृदय आत्मा का मंदिर है, इसलिए परमात्मा का मंदिर भी है। किसी बड़े भारी धनी व्यक्ति के सब से बहु-मूल्य कमरे की कल्पना करो। यह बहुत ही उत्तम वस्तुओं से सजा होगा, इसमें बैठने के लिए बहुत ही कोमल बिछौने बिछे होंगे। शीतल वायु, सुगंधित द्रव्यों एवम् मंद प्रकाश की भी इसमें व्यवस्था होगी। दुनियाँ में सब से अधिक मोहक और आराम देने लायक जो कमरा तुमने देखा हो उससे हजारों गुना आनन्द प्रद इस हृदय को अनु-भव करो। बाहरी दुनियाँ का ध्यान छोड़कर जितना ही इसमें एकाग्रता पूर्वक प्रवेश करोगे, उतना ही आनन्द अधिक आवेगा। हृदय आत्मा का पवित्र मन्दिर होने के कारण इसके अन्दर संसार का एक भी विकार किसी प्रकार प्रवेश नहीं कर सकता। जब तुम इस मन्दिर में घुस जाते हो तो तुम्हें बुरी तरह सताने वाले दुष्ट स्वभाव, एवम् पापकर्म बाहर ही खड़े रह जाते हैं। चाहे तुमने कितने ही बुरे कर्म क्यों न किये हों और अपनी कुत्सित आदतों के कारण कितने ही उद्विग्न क्यों न रहते हो परन्तु जैसे ही हृदय मन्दिर के दरवाजे पर पैर रखते हो वैसे ही वे सब दुष्ट निशाचर बाहर खड़े रह जावेंगे। तुम परमात्मा के पुत्र हो, इस लिए केवल तुम्हें ही अपने पिता के राजा प्रासाद में प्रवेश करने की आज्ञा है। पाप रूपी दुष्ट चाण्डालों को द्वारपाल किसी भी प्रकार भीतर जाने नहीं देसकते।

हृदय के इस सात्विक स्थान को ब्रह्म लोक या गौ लोक भी कहते हैं क्योंकि इसमें पवित्रता प्रकाश और शान्ति का ही निवास है। परमात्मा ने यह स्वर्ग सोपान हमें सुख प्राप्त करने के लिए दिया है किन्तु अज्ञानवश मनुष्य उसे जान नहीं पाते

आराम के लिए मनोरञ्जन के लिए होटलों और नृत्यगृहों में जाते हैं, पर वे नहीं जानते कि इनसे भी बहुत अधिक संतोष देने वाला एक विनोदागार हमारे अपने अन्दर है।

जब कभी किसी दुखद घटना से तुम्हारा मन खिन्न हो रहा हो, निराशा के बादल चारों ओर से छाये हुए हैं, असफलता के कारण चित्त दुखी बना हुआ हो, भविष्य की भयानक आशङ्का सामने खड़ी हुई हो, बुद्धि किंकर्तव्य विमूढ़ हो रही हो तो इधर उधर मत भटको। उस लोमड़ी को देखो, वह शिकारी कुत्तों से घिरने पर भाग कर अपनी गुफा में घुस जाती है और वहाँ संतोष की सांस लेती है। ऐसे विषम अवसरों पर सब ओर से अपने चित्त को हटा लो और अपने हृदय मन्दिर में चले जाओ। बाहर की समस्त बातों को बिलकुल भूल जाओ! पाप तापों को द्वार पर खड़ा छोड कर जब भीतर जाने लगोगे तो मालूम पड़ेगा कि एक बड़ा भारी बोझ, जिसके भार से गरदन टूटी जा रही थी, उतर गया और तुम बहुत ही हलके—रुई के टुकड़े की तरह हलके हो गये हो। हृदय मन्दिर में इतनी शान्ति मिलेगी, जितनी ग्रीष्म तपे हुए व्यक्ति को बर्फ से भरे हुए कमरे में मिलती है। कुछ ही देर में आनंद की झपकियाँ लेने लगोगे। देखा गया है कि कई दिनों से व्यथा से पीड़ित मनुष्यों को जब इस रक्षित अभेद्य दुर्ग में प्रवेश करने को कहा गया तो वे आनंद की झपकियाँ लेने लगे और उनका बाहरी शरीर भी निद्रा के वशीभूत हो गया।

ऐसे शान्तिदायी स्थान में एकाएक प्रवेश पा-सकना कठिन होता है। इसलिए पहले ही इसका अभ्यास करना आरंभ करदो। प्रातः सायं जब अवसर मिले, एकान्त स्थान में जाओ और किसी आराम कुर्सी या मसंद के सहारे शरीर को बिलकुल ढीला छोड़ कर पड़ रहो। अपने हृदय मन्दिर के संबंध में ऊँची से ऊँची शांति दायक भावना करो। मानो जो कुछ भी शांतिदायक वस्तुऐं दुनियाँ में हो सकती हैं, वह इसके अन्दर भरी हुई हैं। हृदय मंदिर का तात्पर्य यहाँ मांस के लोथड़े से नहीं है वरन् सूक्ष्म हृदय से है, जो उसके आन्तरिक भागों में रहता है और ज्ञान चक्षुओं से ही देखा जा सकता है। अब अपने को बिलकुल अकेला अनुभव करते हुए संसार को पूर्णतः भुलाते हुए धीरे धीरे नीचे उतरो और जैसे ही अन्तर प्रदेश में गहरे घुसने लगो वैसे ही अपने सब भले बुरे विचारों को बाहर छोड़ दो। मानो तुम बिलकुल विचार रहित होगये हो आनन्द के अतिरिक्त और किसी प्रकार का कोई संकल्प ही मत उठने दो। इस प्रकार तुम अपने अक्षय दुर्ग में बैठ कर कुछ क्षण के लिये—विषाक्त बंधनों से छुटकारा पा सकोगे और इन क्षणों में वृद्धि करते करते शाश्वत समाधि तक पहुँच सकोगे।

आत्मा का यथार्थ ज्ञान संपादन करना प्रत्येक मनुष्य का आवश्यक कर्तव्य है। आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म, अचल, शुद्ध और सच्चिदानन्द रूप है। जो मनुष्य यथार्थ ज्ञान दृष्टि से आत्मा को नहीं जानता, किन्तु भ्रम व अज्ञानवश होकर उसको कर्ता, भोक्ता, सुखी, दुखी, स्थूल, कृश, अमुक का पिता, अमुक का पुत्र, अमुक की स्त्री, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इत्यादि भिन्न भिन्न प्रकार का समझता है, वह बड़ा अपराधी है।

* * *

बीते हुए की चिन्ता न करो, जो अब करना है उसे विचारो और विचारो कि बाकी का सारा जीवन केवल उस परमात्मा के ही काम में आवे।

* * *

पराये पापों के प्रायश्चित्त की चिन्ता न करो, पहिले अपने पापों का प्रायश्चित करो।

* * *

अपने पापों को देखते रहना और उन्हें प्रकाश कर देना भी पापों से छूटने का एक प्रधान उपाय है।

* * *

अमर बनने के उपाय

[श्री० हरि गणेश गोडबोले बी० ए०]

बुद्धि और विचारवान मनुष्य यह जान कर कि देहेन्द्रियादि सब अनात्म वस्तु हैं, केवल परमात्मा में लीन होकर रहता है। जो मनुष्य देहेन्द्रियादि आत्म भाव से ग्रहण नहीं करता, वह पहले इस संसार के दुःख से मुक्त हो जाता है। दूसरी बात यह है कि उसके अन्तःकरण में काम, क्रोधादि विकार उत्पन्न नहीं होते। तीसरे वह अमरत्व को पहुँच जाता है। अन्तिम और सब से श्रेष्ठ लाभ यह है कि आत्म प्राप्ति के लिए उसको इधर उधर नहीं भटकना पड़ता। यदि कोई ज्ञान प्राप्ति के हेतु से एक ही स्थान पर बैठा रहे और सदैव शुभ संकल्प करता रहे, तो कुछ समय से उसका मन परिपक्व हो जायगा और इस छोटे से प्रयत्न से ही अमरत्व को प्राप्त कर लेगा।

यद्यपि जरा और मृत्यु देह के धर्म हैं तथापि इनके ऊपर योगाभ्यास से बहुत कुछ विजय प्राप्त की जा सकती है। हमारा मानवी जीवन सर्वथा हमारे वीर्य (शुक्र अथवा रेतस) पर अविलंबित है और वीर्य चित्त पर अवलंबित रहता है। अतएव जिन उपायों से शुक्र और मन की रक्षा होगी, उन्हीं के द्वारा यौवन और दीर्घ जीवन प्राप्त किया जा सकेगा। हठ योग के आचार्यों ने इस विषय को बहुत स्पष्ट कर दिया है, वे कहते हैं कि-मनुष्यों का जीवन वीर्य पर निर्भर है और वीर्य केवल मन के आधीन रहता है, इसलिये हर प्रयत्न से मन की रक्षा करनी चाहिए, मन की स्थिरता से प्राण वायु स्थिर हो जाता है और प्राण वायु की स्थिरता हो जाती है। जब वीर्य स्थिर हो जाता है, तब शरीर में बल उत्पन्न होता है और साहस आता है। उस समय मनुष्य सब प्रकार के भयों से मुक्त हो जाता है। योगीजन वीर्य की रक्षा से मृत्यु को जीतते हैं। वीर्य पात ही मरण और वीर्य धारण ही अमरत्व है।

स्वप्न सिद्धि का अनुभव

(श्री० श्रीकान्त शास्त्री, नारायणपुर)

स्वप्न सिद्धि का साधन अन्य तांत्रिक साधनों की तरह न तो सादा है और न सर्व दुर्लभ। इस का प्रमाण हमारे जैसे निरुद्योगी जीव की इसमें अभूत पूर्व सफलता है। इसके साधन के लिए न तो कन्दरा में जाने की आवश्यकता है और न स्मशान में। सोने के समय अपनी शय्या पर पवित्र तम विचार धारण कर बायें हाथ में लाल कनेर का फूल और दाहिने में रुद्राक्ष की माला ले बैठ जाइये और निम्न मंत्र ४००सौ का संख्या में जपिये। बाद में सो जाइये। इसी तरह सात दिन तक पवित्र वातावरण में रहकर साधन करते रहिए। आठवें दिन सातों फूलों को घी में भिगो कर उसी मंत्र से हवन दे दीजिये। मंत्र सिद्ध हो जायेगा। बाद जिस प्रश्न का उत्तर जानना हो, रात में उसकी धारणा कर सो जाइये। प्रातः काल उठकर विचार कीजिये, स्वप्न में उसका क्या उत्तर आया? ठीक वही उत्तर होगा। सर्व प्रथम आठवें दिन हमने पूछा—'हम मंत्र सिद्ध कर पाये या नहीं? स्वप्न में देखा कि—हम और हमारे एक मित्र दोनों एक अज्ञात तीर्थ में हैं। सामने दिव्याङ्गनाओं की एक टोली है। टोली की अध्यक्षा हमें देखकर मुस्करा रही है। बाद वह आई और प्रणाम का प्रेम-दृष्टि से देखकर चली गई। हम दोनों विस्मित थे। बाद आवाज आई-हम वही थीं, जिसके पीछे आठ दिन से लगे थे! नींद टूटी। इसी प्रकार बहुत सी परीक्षायें लीं और सच्चा उत्तर पाया। मन्त्र यों है—ओ३म् मणिनद चिल्लकाय सर्वार्थ सिद्धि कार्यामम स्वप्न दर्शनाय कुरु कुरु स्वाहा।' इसका जप जापक को भविष्य वक्ता बना सकता है। किन्हीं स्मृतिहीन साधकों को स्वप्न याद नहीं रहते, अतः इस पर अविश्वास करते हैं। पर यह कोई कारण नहीं। अतः प्रातः काल उठकर पुनः कुछ जप करेंगे तो स्वप्न याद आ जायगा। यदि कोई सज्जन इसके विषय में पूछ ताछ करना चाहें तो मुझ से नारायणपुर पो० एकंगरसराय पटना के पते से जवाबी टिकट देकर पूछ सकते हैं।

भजन से रोग मुक्ति

(ले०-श्री० गणेशप्रसाद, मंझनपुर, इलाहाबाद)
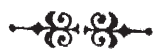
मानव समाज में कुछ ऐसे नास्तिक एवं अभिमानी सज्जन अवश्य मिलेंगे,जो बहुधा अपने अहंकार में डूबे रहते हैं, यह उनकी मूर्खता के सिवाय अन्य कुछ नहीं है। वास्तव में बिना ईश्वरेच्छा के डाली में लगा हुआ पत्ता तक नहीं हिल सकता। युद्धस्थल में सहस्रों, लाखों योद्धाओं में से एक वीर जिसमें विशेष शक्ति है, निकल कर विरुद्ध पक्ष के सैकड़ों योद्धाओं को मार काट कर धराशायी बना देता है। संयोगवश जब वही वीर युद्धस्थल में मारा जाता है, तो उसे श्मशान तक पहुँचाने के लिये सहायकों की आवश्यकता होती है। भला सोचिये तो! अब उसकी शक्ति कहाँ अन्तर्ध्यान होगई? जिससे उसमें उठने चलने तथा जन-संहार की सामर्थ्य जाती रही। इसी प्रकार जो राजा करोड़ों मनुष्यों पर कुछ समय पूर्व शासन करता था, मृत्यु प्राप्त होने पर उसकी सारी दशा में परिवर्तन हो जाता है। तब भी उसके लिये डाक्टर, वैद्य प्रत्येक प्रकार की सामग्री, धन तथा जन सभी उपस्थित रहते हैं, किन्तु उनमें ऐसी सामर्थ्य नहीं, जो उसके पार्थिव शरीर में जीवन शक्ति उत्पन्न कर दें। क्या वैद्य,डाक्टरों की कुशलता राजा के उस मृत देह को देख कर कपूर बन जाती है अथवा औषधि का तत्व ही निकल जाता है? ऐसे समय में नास्तिकों और अभिमानी सज्जनों की आंख खुल जाती हैं तथा कोई उत्तर मुख से नहीं निकलता। माता के गर्भ में कलल तथा भ्रूण का पालन और उसकी रक्षा दश मास तक कौन करने जाता है? शिशु के उत्पन्न होते ही माता के स्तनों में दूध का प्रबन्ध करने वाला कौन है और उसे जन्म लेते ही स्तन पान करना कौन सिखाता है? बन्दर का बच्चा जन्म लेते ही डाल पकड़ना कैसे सीख जाता है? चट्टान के गर्भ में निवास करने वाले मेंढ़क को भोजन देने कौन जाता है? उपरोक्त प्रश्नों पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर हृदय में यह बात अपने आप उत्पन्न हो जाती है कि इन सब कार्यों के सञ्चालक बनाने वाली कोई गुप्त शक्ति अवश्य है जो मनुष्य की शक्ति के परे है। मनुष्य उसमें बिना भगवद्-कृपा कुछ नहीं कर सकता। इस तरह संसार के प्रत्येक कार्य्य में ईश्वर की प्रेरणा उपस्थित रहती है, जिसे प्रत्येक मनुष्य हर समय अनुभव नहीं कर सकता।

मुझ जैसे संसारी एवं अज्ञानी मनुष्य को अब तक परमात्मा की सत् प्रेरणा या कृपा का विशेष अनुभव केवल आर्त होने पर हो सका है। उन्होंने ऊँचे अधिकार का पात्र अभी परमात्मा ने मुझे नहीं बनाया। मैं स्वयं लगातार ३ वर्ष तक Tubercular Abscess वृणाक्रय से पीड़ित रहा। अनेक प्रसिद्ध २ डाक्टरों वैद्यों एवं हकीमों से औषधि कराने के लिये प्रदेश २ मारा २ फिरता रहा किन्तु मेरी दशा उत्तरोत्तर बिगड़ती ही चली गई। आत्मीय जन, मेरे इलाज में वर्षों से तन,मन और धन लगाकर असफलता ही का साक्षात्कार करते २ निराश एवं दुःखी हो गये। प्रभावतः उन्होंने मुझ से अपने आन्तरिक भाव तक प्रकट कर दिया कि "मेरे शरीर की मृत्यु सन्निकट है, अब औषधि व्यर्थ है केवल परमात्मा की ही शरण ग्रहण करना चाहिये। मनुष्य अपने शरीर को नश्वर समझता हुआ भी उसके बिनाश के नाम से दुःखी होता है,अतएव मेरे हृदय में भी अज्ञानता से आत्म वेदना की टीस उठी। मैं वृद्ध स्वजनों की आज्ञा शिरोधार्य कर अपने को ईश्वरार्पण कर दिया और यह विश्वास कर कि "सर्व शक्तिमान परमेश्वर मेरे हार्दिक करुण कृन्दन तथा आत्म-विश्वास को ठुकरा नहीं सकता वह जो कुछ करता है, सब अच्छा ही करता है और वह अवश्य ही मुझे अपनी विशेष कृपा का अधिकारी

समझ अवश्यमेव रोग मुक्त करेगा ।" मैं भी भगवद्भजन में अपना अधिकांश समय बिताने लगा, दुखी हृदय से ईश्वर से प्रार्थना करना आरंभ कर दिया। साथ ही इलाज भी कराता रहा, अन्त में परमात्मा ने कुछ मास पूर्व मुझे दुःखावर्त से बाहर निकाल आरोग्य प्रदान किया।

अब इस समय मैं अपनी रोग मुक्तता के लिये परमेश्वर को कोटिशः प्रणाम करता रहता हूँ और जब कभी कोई ठोकर लगती या ज्वर आ जाता है, तो दुःखी हृदय से जगदीश्वर को स्मरण करता हूँ तथा उसकी कृपा समझ कर कहता हूँ कि "हे ईश्वर ! तू मुझे इसी प्रकार सचेत करता रह, जिससे मेरे पापों या कुकृत्यों का खाका मेरे आँखों के सामने आता रहे और मैं भावी जीवन में उनसे बच कर जीवन लक्ष पर आत्म साक्षात्कार की ओर अग्रसर हो सकूं।"

धर्म का परिपालन

(ले०—श्री० त्रिलोकनाथ शुक्ल, भेलौरा)

धर्म पालन करने के मार्ग में अनेक प्रकार की बाधायें उपस्थित होती हैं, जैसे मन की निर्बलता, चित्त की चञ्चलता, आलस्य, स्वार्थपरता तथा स्वार्थ पूर्ण और बुरे विचार इत्यादि। मनुष्य यदि इन्हीं द्विविधाओं में पड़ा रहा, तो उसे स्वार्थ-परता निश्चय ही आ घेरेगी और चरित्र घृणा के योग्य हो जावेगा, इसलिये जिस कार्य के करने की आत्मा प्रेरणा करे उसे बिना अपना स्वार्थ सोचे झट पट कर डालना चाहिये, इसी प्रकार जब स्वार्थ रहित परोपकार करने की आदत पड़ जायगी, तो धर्म पालन करने में किसी प्रकार की बाधा न पड़ेगी। प्राचीन काल के जितने बड़े-बड़े महात्मा और धर्मात्मा हो गये हैं और जिन्होंने संसारके उपकारमें अपना सर्वस्वअर्पण कर दियाहै, जिस कारण आज भी आदर और प्रेम से उनका नाम लिया जा रहा है, उन महापुरुषों ने अपने कर्तव्य को सब से श्रेष्ठ मानकर न्याय का बर्ताव किया है।

सत्यता और कर्तव्य पालन करने में बड़ा घना सम्बन्ध है, जो व्यक्ति अपना कर्तव्य पालन करता है, वह अपने कर्मों और वचनों से, सत्यता का बर्ताव भी रखता है। सत्यता ही एक ऐसा अमूल्य रत्न है, जिसके सहारे मनुष्य प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है। संसार में असत्य से कोई काम अधिक समय तक नहीं चल सकता, इस लिये ही सत्य को सब से ऊँचा स्थान देना उचित है।

दुनिया में बहुत से ऐसे भी लोग होते हैं, जो असत्य भाषण में अपनी चतुराई समझते हैं और झूंठ बोल कर अपना स्वार्थ साधन करते हुए प्रसन्न होते हैं। ऐसे लोग ही समाज को नष्ट कर के दुःख और संताप के फैलाने में मुख्य कारण होते हैं। हमारा परम कर्तव्य होना चाहिये कि सत्य को ग्रहण करते हुए कभी झूंठ न बोलने की प्रतिज्ञा करलें। चाहे उसमे कितनी ही हानि क्यों न हो। यह कदापि न सोचना चाहिये कि मेरा पड़ोसी अनुचित कर्म करके इस वैभव को प्राप्त हुआ है।

उचित कर्म करने और सत्य बोलने से ही हमारा समाज में सम्मान हो सकेगा और आनन्द पूर्वक अपना जीवन भी बिता सकेंगे, क्योंकि उचित कर्म करने वाले को सभी चाहते हैं और अनुचित कर्म करने वाले से सभी घृणा करते हैं। उचित का मूल सत्य है, यदि हम सत्य को अपना धर्म मान लेंगे, तो धर्म पालन करने में कुछ भी कष्ट न होगा और अपने मन में सदा सुखी और सन्तुष्ट बने रहेंगे।

दुःख से सुख की उत्पत्ति

[ले०—भारतेन्दु वेदालंकार गुरुकुल, सूपा]

प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य दुःख अथवा अन्य किसी प्रकार की आपत्ति आने पर घबरा जाता है। उस समय उसका मन बहुत ही डांवाडोल स्थिति में होता है, विवेक शक्ति नष्ट सी हो जाती है और उसे समझ नहीं आता कि मैं क्या करूं। यह तो मनुष्य का स्वभाव है, एक मनो वैज्ञाकिक सचाई है। इस सचाई के होते हुए भी हमें देखना है कि इस दुःख और आपत्ति से हमारी नैतिक उन्नति हो सकती है। यह हमारे लिए एक बहुत श्रेष्ठ एवं स्थायी सुख को जन्म देने वाला है, यदि हम यह सोचें कि यह दुःख हमें क्यों आया—इसका कारण क्या है? हम साधारण मानव इसके असली कारण को शायद न जान सकें, परन्तु इतना तो मालूम ही होता है कि हरेक अच्छे या बुरे काम का फल जरूर मिलता है। अच्छे का अच्छा फल-सुख तथा बुरे का बुरा फल—दुःख। कर्म फल का यह अटूट सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को ध्यान में रख कर हम आये हुये दुःख या आपत्ति का कारण हमारे बुरे काम हैं, यह बात समझ जांयगे। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति को दस रुपये चुराये जाने पर या अमुक प्रिय वस्तु के गुम हो जाने पर दुःख होता है—वह रोता है और गई वस्तु पर बार २ अफसोस करता है। परन्तु यदि वह उस समय यह समझ ले कि ये रुपये या वस्तु मैंने अधर्म से ली थी, इसी लिये मैं इसका उपभोग नहीं कर सका, जरूर ही किसी समय यह पाप किया होगा, क्योंकि उसका कारण होना ही चाहिये। इसी प्रकार संसार में हरेक दुःख और आपत्ति के समय धैर्यपूर्वक इसको सोचे, तो हमें ये दुःख, दुःख मालूम नहीं होंगे, परन्तु इसके विपरीत हमारा नैतिक जीवन बहुत ही उन्नत हो जायगा। हम असली सुख को पायेंगे। इस सुख की ओर बढ़ने के लिए हमें एक सूत्र याद रखना चाहिये और वह यह कि, 'ईश्वर जो कुछ भी करता है, वह अच्छा ही करता है'। अर्थात् जो भी सुख या दुःख आता है, वह परमात्मा के न्यायानुसार होता है। अतः हमें उसको सहन करना चाहिये। ऐसा समझ लेने पर हम कभी भी किसी का रुपया, धन या अच्छी लगनी वाली वस्तु को हड़पने या अधर्म से लेने को नहीं ललचायँगे। हमारी प्रवृत्ति अधर्म (पाप) से हट कर धर्म (पुण्य) की ओर हो जायगी और इस प्रकार निश्चय ही हम सच्चे सुख और ऐश्वर्य के भागी बनेंगे। इसीलिये कहते हैं कि सुख या दुःख मन की कल्पना से बनाई हुई है, वास्तव में कोई वस्तु नहीं है। इसको हम ठीक २ तभी समझ सकते हैं, जब इस सूत्र पर पूर्ण विश्वास और श्रद्धा हो—'ईश्वर जो कुछ करता है, वह अच्छा ही करता है।' यह है सुख की असली कुन्जी।

भाग्यवान वह है, जिसका धन उसका गुलाम है, अभागा वह है, जो धन-गुलाम है।

* * *

"धर्म ही सत्यता को प्राप्त कराता है। धर्म को कोई भी नहीं टाल सकता। धर्म का हृदय प्रेम और इसका अन्त शान्ति और मधुर सम्पूर्णता है अतएव धर्म का पालन करो।"

"बुद्धिमान मनुष्य वही है, जो संकट उपस्थित होने पर न उनसे मुँह छिपाता है और न घबराता है, बल्कि शान्ति के साथ स्थिर रहता है।"

"स्वार्थ की देवी की पूजा मनुष्य के विचार और कार्य समाप्त हुए पश्चात् रुलाती और खेद पहुँचाती है।"

"दया अशक्तों के लिये संसार को कोमल बनाती है और शक्तिमानों के लिए संसार को उन्नत बनाती है।"

स्वदेशी व्रत

(महात्मा गांधी)

स्वदेशी व्रत इस युग का महाव्रत है। जो वस्तु आत्मा का धर्म है, लेकिन अज्ञान या दूसरे कारण से आत्मा को जिसका भान नहीं रहा, उसके पालन के लिये व्रत लेने की ज़रूरत पड़ती है। जो स्वभावतः निरामिषाहारी है, उसे आमिषाहार न करने का व्रत नहीं लेना रहता। आमिष उसके लिये प्रलोभन की चीज़ नहीं होती, उल्टे आमिष देख कर उसे उल्टी आती है।

स्वदेशी आत्मा का धर्म है, पर वह बिसर गया है, इससे उसके विषय में व्रत लेने की ज़रूरत पड़ती है। आत्मा के लिये स्वदेशी का अन्तिम अर्थ सारे स्थूल सम्बन्धों से आत्यन्तिक मुक्ति है। देह भी उसके लिये परदेशी है। क्योंकि देह अन्य आत्माओं के साथ एकता स्थापित करने में बाधक होती है, उसके मार्ग में विघ्नरूप है। जीव-मात्र के साथ ऐक्य साधते हुए स्वदेशी धर्म को जानने और पालने वाला देह का भी त्याग करता है।

यह अर्थ सत्य हो तो हम आसानी से समझ सकते हैं कि अपने पास-पड़ौस की सेवा में ओत-प्रोत हुए रहना स्वदेशी धर्म है। ऐसी सेवा करते दूर वाले बाकी रह जाते हैं अथवा उनको हानि होती है. ऐसा आभासित होना सम्भव है। पर वह आभास-मात्र होगा। स्वदेशी की शुद्ध सेवा करने में परदेशी की भी शुद्ध सेवा हो ही जाती है। जैसा पिंड में वैसा ब्रह्मांड में। इसके विरुद्ध दूर की सेवा करने का मोह रखने में वह तो होती नहीं और पड़ोसी की सेवा छूट जाती है। यों न इधर के रहे न उधर के ही, दोनों बिगड़ते हैं। मुझ पर आधार रखने वाले कुटुम्बी जन और ग्राम वासियों को मैंने छोड़ दिया तो मुझ पर उनका जो आधार था वह चला गया। दूर वालों की सेवा करने जाने में उनकी सेवा करने का जिसका धर्म है, वह उसे भूलता है। वहाँ का वातावरण बिगाड़ा और अपना तो बिगाड़ कर चला ही था। ऐसे अनगिनत हिसाब सामने रख कर स्वदेशी-धर्म सिद्ध किया जा सकता है। इसीसे 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' वाक्य की उत्पत्ति हुई है। इसका अर्थ यों किया जाय तो ठीक होगा कि 'स्वदेशी पालते हुए मौत भी हो तो अच्छी, परदेशी तो भयानक ही है," स्वधर्म अर्थात् स्वदेशी।

स्वदेशी न समझने में ही गड़बड़ होती है। कुटुम्ब पर मोह रख कर मैं उसे पोसूं, उसके लिये धन चुराऊँ, यह स्वदेशी नहीं है। मुझे तो उनके प्रति मेरा जो धर्म है, उसे पालना है। उस धर्म की खोज करते और पालते हुए मुझे सर्वव्यापी धर्म मिल रहता है। स्वधर्म के पालन से परधर्मी को या परधर्म को कभी हानि पहुँच ही नहीं सकती, न पहुँचनी चाहिये। पहुँचे तो माना हुआ धर्म स्वधर्म नहीं, बल्कि वह स्वाभिमान है। इससे वह त्याज्य है।

स्वदेशी का पालन करते हुए कुटुम्ब का बलिदान भी देना पड़ता है। पर वैसा करना पड़े तो उसमें भी कुटुम्ब की सेवा होनी चाहिये। यह सम्भव है कि जैसे अपने को खोकर अपनी रक्षा कर सकते हैं, वैसे कुटुम्ब को खोकर कुटुम्ब की रक्षा कर सकते हैं। मानिए, मेरे गाँव में महामारी हो गई। इस बीमारी के चंगुल में फँसे हुओं की सेवा में मैं अपने को, पत्नी को, पुत्रों को, पुत्रियों को लगाऊँ और सब इन रोग में फँस कर मौत के मुँह में चले जाँय तो मैंने कुटुम्ब का संहार नहीं किया, मैंने उसकी सेवा की है। स्वदेशी में स्वार्थ नहीं है अथवा है तो वह शुद्ध स्वार्थ है। शुद्ध स्वार्थ माने परमार्थ, शुद्ध स्वदेशी माने परमार्थ की पराकाष्ठा।

इस विचार-धारा के अनुसार मैंने खादी में सामाजिक शुद्ध स्वदेशी धर्म देखा। सब की समझ में आने योग्य, सभी को जिसके पालने की भारी आवश्यकता हो, ऐसा इस युग में, इस देश में कौन-स्वदेशी-धर्म हो सकता है? जिसके अनायास पालन से भी हिन्दुस्तान के करोड़ों की रक्षा

हो सकती है ऐसा कौनसा स्वदेशी धर्म हो सकता है ? जवाब है चर्खा अथवा खादी।

कोई यह न माने कि इस धर्म के पालन से परदेशी मिल वालों को नुकसान होता है। चोर को चुराई हुई चीज़ वापस देनी पड़े या वह चोरी करते रोका जाय तो उसमें उसे नुकसान नहीं है, फ़ायदा है। पड़ोसी शराब पीना या अफीम खाना छोड़ दे तो इससे कलवार को या अफीम के दूकानदार को नुकसान नहीं लाभ है। बे वाजबी तरह से जो अर्थ साधते हों, उनके इस अनर्थ का नाश होने में उनको और जगत को फायदा ही है।

पर जो चर्खे द्वारा जैसे-तैसे सूत कात कर खादी पहन-पहना कर स्वदेशी धर्म का पूर्ण पालन हुआ मान बैठते हैं, वे महामोह में डूबे हुए हैं। खादी यह सामाजिक स्वदेशी की पहली सीढ़ी है, इस स्वदेशी धर्म की परिसीमा नहीं है। ऐसे खादीधारी देखे गये हैं, जो और सब सामान विदेशी रखते हैं; वे स्वदेशी का पालन करने वाले नहीं कहे जा सकते वे तो प्रवाह में बहने वाले हैं। स्वदेशी व्रत का पालन करने वाला बराबर अपने आस-पास निरीक्षण करेगा और जहाँ-जहाँ पड़ोसी की सेवा की जा सकती है अर्थात् जहाँ-उनके हाथ का तैयार किया हुआ आवश्यक माल होगा वहाँ वह दूसरा छोड़ कर उसे लेगा फिर चाहे स्वदेशी वस्तु पहले महँगी और कमदर्जे की हो। व्रत धारी इसे सुधारने और सुधरवाने का प्रयत्न करेगा। कायर बन कर, स्वदेशी खराब है, इससे विदेशी काम में नहीं लाने लग जायगा।

किन्तु स्वदेशी धर्म जानने वाला अपने कुँए में डूबेगा नहीं। जो वस्तु स्वदेश में नहीं बनती अथवा महा कष्ट से ही बन सकती है उसे परदेश के द्वेष के कारण अपने देश में बनाने बैठ जाय तो उसमें स्वदेशी धर्म नहीं है। स्वदेशी धर्म पालने वाला कभी परदेश का द्वेष करेगा ही नहीं। अतः पूर्ण स्वदेशी में किसी का द्वेष नहीं है। यह संकुचित धर्म नहीं है। वह प्रेम में से, अहिंसा में से पैदा हुआ सुन्दर धर्म है।

जीवन संगीत।

(श्री रामसेवक गुप्त सेवकेन्द्र, दतिया)

जीवन में कहीं सौभाग्य या प्रभात काल होता है। सुख का सूर्य उदय होता है और ज्ञान की वायु बहती है। सुन्दर उषा के दर्शन होते हैं। दूसरी ओर कड़ी दुपहरी होती है, सूर्य उग्र रूप धारण कर लेता है और वायु लू बन कर अनेकों को चाटती है।

लोभ, मद, मोह, स्वार्थ और माया ये जीवन के आज्ञाकारी सैनिक तथा सेवक हैं, किन्तु इनसे डर जाते हैं और अर्थ का अनर्थ कर देते हैं। मनुष्य कि कर्त्तव्य विमूढ़ होकर अपना सीधा मार्ग खो देते हैं और अशाँति के भँवर में गोते लगाते हैं।

जीवन एक ऐसी कठिन यात्रा है, जिसमें गम्भीर बातें और विपत्ति के दृश्य हैं। यह गाने बजाने के लिए एक प्रहसन नहीं है। इसमें थोड़ी दूर आगे चल कर कभी उजाड़ मैदान और दलदल मिलेगा, कभी रथ और विमानों की सुविधाजनक यात्रा।

विषम परिस्थितियाँ जीवन का सौन्दर्य है। क्योंकि विभिन्नता ही सौन्दर्य का मूल तत्व है। स्वर की विभिन्नता का नाम ही संगीत है। हमारे जीवन में विविधताएँ रहती हैं, इसीलिये वह सुन्दर और संगीतमय प्रतीत होता है। वास्तव में सुख और दुःख, रोग और स्वास्थ्य, अमीरी और गरीबी, क्षुधा और तृप्ति, तिताई और मिठाई इसलिये पैदा की हैं कि मनुष्य इनमें से एक दूसरे के भेद को जान सके, सौन्दर्य की परख कर सके, संगीत का आनन्द ले सके।

किन्तु जो इन्हीं में लिप्त हो जाता है, दुख में रोता है और सुख में आता है, वह बालक की तरह अज्ञान है, जो खिलौने पर ही सारी मुहब्बत उडेल देता है। हमें चाहिए कि इन विभिन्नताओं में वैसा ही आनन्द लें जैसा खटाई और मिठाई में लेते हैं, पंचम और खरज दोनों ही स्वरों को सुनने के लिए तैयार रहें, तो हमारा जीवन, सङ्गीत की तरह मधुर हो सकता है।

भक्ति-योग ।

(स्व० श्री० विवेकानन्द जी महाराज)

एक जिज्ञासु अपने गुरु के पास गया और उनसे कहा—महाराज मैं धर्म प्राप्त करना चाहता हूँ। गुरु जी उस युवक जिज्ञासु की ओर देख कर जरा सा मुसकरा भर दिये, मुँह से कुछ न बोले। उस दिन से युवक प्रति दिन ही आता और धर्म प्राप्ति के लिये आग्रह पूर्वक निवेदन किया करता। परन्तु गुरु जी बड़े ही चतुर थे, वे प्रति दिन ही युवक को टाल दिया करते थे। एक दिन धूप बड़ी तेज थी। गर्मी के मारे चित्त व्यग्र हो रहा था। उसी समय युवक फिर आया और गुरु जी से धर्म की प्राप्ति का उपाय पूछने लगा। गुरु जी ने युवक से कहा—बच्चा, आओ चलें, नदी में स्नान कर आवें। गुरु जी की आज्ञानुसार युवक नदी तट पर गया और पहुँचते ही जल में कूद कर गोता लगाया। युवक के पीछे ही गुरु जी भी कूद पड़े। युवक ने गोता लगाया ही था, कि गुरुजी ने उसे जोर से दबा लिया। उसे वे बड़ी देर तक पानी के नीचे दबाये रहे। जरा देर तक छटपटाने के बाद गुरुजी ने युवक को छोड़ दिया। युवक ने जब पानी से ऊपर सिर निकाला, तब गुरु जी ने उससे पूछा कि जब तक तू पानी में डूबा था, तुझे किस चीज की सबसे अधिक आवश्यकता मालूम पड़ रही थी ? युवक ने उत्तर दिया कि सांस लेने के लिये जरा सी हवा की। यह सुन कर गुरु जी ने पूछा—उस समय हवा के लिये तू जितना व्यग्र था, क्या तुझे उतनी ही व्यग्रता ईश्वर के लिये भी है ? यदि तुझे ईश्वर की प्राप्ति के लिये भी वैसी ही उत्कंठा है तो उसे एक क्षण में पा जायगा। परन्तु जब तुझे उस तरह की उत्कंठा, उस तरह की पिपासा न होगी तो तू धर्म को, ईश्वर को प्राप्त करने में समर्थ न हो सकेगा। चाहे अपनी बुद्धि को कितना ही क्लेश क्यों न दे ? चाहे कितनी ही पुस्तकें क्यों न रट डाल, चाहे जीवन पर्यन्त कितना ही पूजा-पाठ क्यों न करता रह, ईश्वर की प्राप्ति के लिये जब तक उस तरह की पिपासा न उत्पन्न हो जाय, तब तक तू एक नास्तिक के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, नास्तिक में और तुझ में अन्तर केवल इतना ही है कि उसकी भावना दृढ़ है और तू सन्देह में पड़ा है।

एक बहुत बड़े ऋषि थे। वे कहा करते थे कि—मान लीजिये किसी कमरे में एक चोर बैठा है, उसे यदि किसी तरह पता चल जाय कि पास वाले कमरे में अपरिमित स्वर्ण राशि भरी है। दोनों कमरों के बीच की दीवार भी इतनी मोटी और दृढ़ नहीं है कि उसमें नकब लगाने में कठिनाई हो, तब चोर की क्या दशा होगी ? उसे नींद न आवेगी। न तो वह भोजन कर सकेगा और न किसी दूसरे ही काम में उसका चित्त लगेगा। उसका मस्तिष्क बार-बार इसी चिन्ता में लगा रहेगा कि यह सोना किस तरह मेरे हाथ लग सके। ऐसी परिस्थिति में संसार में जितने भी मनुष्य हैं, उन सबको यह विश्वास हो जायगा कि वास्तविक सुख का, परमानंद का, ऐश्वर्य का आधार वर्तमान है, तो क्या वे उस सब ऐश्वर्य परमानन्द ईश्वर की प्राप्ति के लिये किसी तरह का उद्योग न कर केवल संसार के तुच्छ सुखों के ही फेर में पड़े रह जाते ? जैसे ही किसी के हृदय में ईश्वर के प्रति विश्वास उत्पन्न होने लगता है, वैसे ही वह उसकी प्राप्ति के लिये उन्मत्त हो उठता है। दूसरे लोग अपनी-अपनी राह चले जावेंगे। परन्तु किसी व्यक्ति को जैसे ही इस बात का निश्चय हो जायगा, कि यहां हम जीवन का जो उपयोग कर रहे हैं, उससे भी अधिक महत्व का अधिक सुखमय कोई जीवन है, जैसे ही वह निश्चित रूप से यह अनुभव करने लगेगा कि यह इन्द्रिय सुख ही सब कुछ नहीं है, जब उसके हृदय में यह धारणा बद्धमूल हो जायगी कि यह तुच्छ भौतिक

शरीर आत्मा के उस अविनाशी शाश्वत और अपरिसीन सुख की तुलना में कुछ भी नहीं है, तब वह उस अनन्त सुख को जब तक नहीं प्राप्त कर लेता, तब तक पागल हुआ रहता है। यह उन्माद ही, यह पिपासा ही, यह अत्यासक्ति ही वह वस्तु है जो कि धर्म के उद्बोधन के नाम से अभिहित है। यह उद्बोधन आते ही मनुष्य धार्मिक होने लगता है, परन्तु इसके लिये बहुत समय अपेक्षित है। यह सब मूर्ति पूजा, पाठ-विधि, अनुष्ठान, स्तुति, तीर्थ-यात्रा, धर्मग्रन्थ, घटा, आरती तथा पुरोहित आदि तो प्रारम्भिक उपक्रम हैं, ये सब आत्मा की अपवित्रता और कल्मष नष्ट करने के लिये हैं। आत्मा जब निष्पाप एवं पवित्र हो जाता है, तब वह अपने आप पवित्रता के आभार, साक्षात् परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिये सचेष्ट होता है। मान-लीजिये कि चुम्बक के समीप ही लोहे का एक टुकड़ा पड़ा है, उसमें सदियों का मोर्चा लगा है। उस मोर्चे के ही कारण चुम्बक आकर्षित नहीं करता। परन्तु मोर्चा के छूट जाने पर जैसे ही वह लोहा साफ हो जाता है, वैसे ही चुम्बक उसे आकर्षित कर लेता है। इसी तरह मनुष्य की आत्मा जो कई युगों की मलीनता, अपवित्रता, दुराचार तथा इस तरह के पापों से आच्छादित रहता है, जब सतत् प्रयत्न से यह मलीनता छूट जाती है, तो प्राणी का आकर्षण आध्यात्म पथ की ओर होता है। जन्म जन्मान्तरों के शुभ संस्कार जब एकत्रित हो जाते हैं, तो मनुष्य ईश्वर की प्राप्ति के लिये व्यग्र भाव से प्रयत्न करना आरम्भ करता है।

दूसरों की सहायता और सेवा करना बड़ी उत्तम बात है, पर यह तभी हो सकता है, जब तुम स्वयं सच्चे और पवित्र बन जाओ।

* * * *

दुनियां के भाग्य को रोक कर नष्ट करने वाले दो ही कारण हैं, पहला अभिमान, दूसरा घृणा।

* * * *

वेदों का अमर सन्देश

(डा० कौशिक)

समानी प्रपा सहवोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सहवो युनज्मि। सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यं तारा नाभिमिकाभितः॥
अथर्व० ३। ३०। ६

तुम्हारी जल-शाला एक सी हो, अन्न का विभाजन साथ-साथ हो, एक ही जुए में मैं तुमको जोड़ता हूँ। जैसे पहिये के अरे नाभि में चारों ओर जुड़े होते हैं, वैसे ही तुम सब मिल कर ज्ञान-रूप प्रभु की पूजा करो।

संगच्छध्वं संवदध्वं सवो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥
ऋग० १०। १९१। २

आपस में मिलो, संवाद करो, जिससे तुम्हारे मन एक ज्ञान वाले हों, जैसा कि पहले देवता (सूर्य-चन्द्रादि) एक मन होकर अपने-अपने भाग का सेवन कर रहे हैं अर्थात् अपना कर्तव्य करते हुए विश्व की स्थिति के कारण बने हुए हैं।

स्वस्ति पन्था मनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता संगमे यहि॥
ऋग् ५। ५१। १५

सूर्य और चन्द्र की भांति हम कल्याणकारी मार्ग पर चलें और दानी, अहिंसक तथा विद्वान् पुरुषों का साथ करें।

ते दृहं मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे॥ यजु. ३६-१८

हे दृढ़ बनाने वाले मुझे ऐसा दृढ़ बना कि सब प्राणी मुझे मित्र दृष्टि से देखें। मैं स्वयं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखता हूं (और चाहता हूँ कि) हम सब आपस में एक-दूसरे को मित्र-दृष्टि से देखें।

अहंभाव का प्रसार करो

(ले०—श्रीशिवनारायण शर्मा हैडमास्टर, आगरा)

(ब्राह्मण)

पृथ्वी पर यदि कोई देवता है तो ब्राह्मण (भूसुर) ही हैं, इसी से ये भूदेव नाम से प्रसिद्ध हैं। जगत के हित के लिये जो आत्म समर्पण करे जगत उनके चरण-प्रान्त में पड़कर कृतार्थ हो; चन्दन मान कर उनकी चरण-रज द्वारा देह आच्छादित करने को व्याकुल होता है, एवं अमृत के समान जानकर उनका चरणोदक पान के लिये लोलुप रहता है, चाहे चक्रवर्ती राजा हो सके, कुवेर से भी अधिक धनवान हो सके, परन्तु यदि आप में परोपकार वृत्ति न रहे तो जगत् कभी आप के समीप शिर न झुकावेगा। आप चाहे रावण की तरह देव देवियों को दास दासी बना कर रख सकें, चाहे जरासन्ध की तरह राजाओं को कैद में रख सकें, किन्तु यदि आप में परोपकार वृत्ति न रहे और अहंभाव का प्रसार न हो तो छोटे से छोटा मनुष्य भी आपके सामने शिर न झुकावेगा। राज महल निवासी भी पर्ण कुटीर वासी के चरणों पर शीश झुकाकर आनन्द से निह्वल होते हैं, मर्त्य में स्वर्ग का अनुभव करते हैं, अपने को दासानुदास जान कर भी तृप्त नहीं होते, इसका गूढ़ रहस्य क्या है? जो उत्तम प्रकार से भोजन करके भी तृप्त नहीं होते, वे हविष्यान्न भोजी के प्रसाद के इच्छुक, राजाधिराजा भिक्षुक के पैरों पर लोटते हैं, इस का गूढ़ रहस्य क्या है?

पाठक! एक बार विचार कर इसका रहस्य देखिये? यदि कोई हम से पूछे कि भारतवासी पराधीन क्यों हैं? तो इसके उत्तर में हम यही कहेंगे कि भारत वासियों में से ब्राह्मणता लुप्तप्राय हो जाने। से लाखों भारतवासी आज जो अन्न के प्रभाव से काल के ग्रास हो रहे हैं, लाखों भारत वासी आज जो मलेरिया, हैज़ा, प्लेग आदि रोगों से आक्रान्त होकर मृत्यु मुख में पड़ते हैं, निश्चय समझिये कि वे केवल भारत में ब्राह्मणों के प्रायः न होने से। केवल ब्राह्मणों का अभाव ही इस दुर्गति का कारण है। ज्ञान विज्ञान, धन, स्वास्थ्य प्राचीन समय में सब ब्राह्मणानुगत थे, एक के अभाव से भारत में सब का अभाव हुआ है। जब भारत में ब्राह्मण थे, तब धन, विद्या, बल, आयु, स्वाधीनतादि सब कुछ था। वृक्ष की जड़ कट जाने पर क्या कभी डाली और पत्ते जीवित रह सकते हैं? समाज के जीवन स्वरूप ब्राह्मण न रहने से समाज क्या कभी जीवित रह सकता है?

ब्राह्मणों के अभाव से समग्र हिन्दू समाज मृतप्राय है। इस मृत समाज को ब्राह्मण के सिवाय और किसी की सामर्थ्य नहीं जो फिर जीवित कर सके, मृत संजीवन मन्त्र द्वारा यदि ब्राह्मण इस मृत भारत को फिर जीवित कर सकें तो ही भारत फिर जागृत होकर सभ्य समाज के शीर्ष स्थान पर अधिकार कर सकें।

स्वयं भगवान विष्णु ने भी ब्राह्मण के चरण छाती पर धारण कर अपने को पवित्र माना है, पाण्डवों के राजसूय यज्ञ में ब्राह्मण के पाँव धोने का कार्य भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं स्वीकार किया था। ब्राह्मण मर्त्य में केवल देवता ही नहीं हैं बल्कि यह साक्षात ब्रह्म हैं। "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" ब्रह्मवित् स्वयंही ब्रह्म है। जिसको ब्रह्म साक्षात्कार हुआ है। जो अपने "मैं" में सारे विश्व का मैं देखता है और जो विश्व के "मैं" में अपना मैं देखता है, वह यदि मानव का आराध्य न होगा, तो फिर आराध्य होगा कौन?

मानव यदि उनका पादोदक न पान करे, उन की पदरज शिर पर धारण न करे, तो फिर मानव और पशु में भेद ही क्या? निर्गुण ब्रह्म की उपासना नहीं होती, ब्रह्मविद ब्राह्मण ही सगुण ब्रह्म स्वरूप हैं, अतएव ऐसे ब्राह्मण ही मानव के पूज्य भूदेव हैं। ब्राह्मण का उच्च आदर्श अनुसरण कर के ब्रह्म के समीप गमन करते । जब भारत में

ब्राह्मण थे तब यही विधि प्रचलित थी। ब्राह्मणों का अभाव होने पर ही प्रतिमा पूजा का नियम प्रचलित हुआ। हाय हिन्दू समाज! तुमने ब्राह्मणों का तत्त्व न समझ कर, ब्राह्मण का धर्म साधन करके, यह काल और परकाल दोनों ही गँवा दिये। विचार देखिये कि आपकी क्या दशा है? आप क्या थे और अब क्या हो गये हैं?

मानव मानव का पूज्य है कैसे? आप दस हज़ार हाथी का बल रखते हैं, परन्तु यदि आपका बल जगत के उपकार में सहायक न हो बल्कि जगत को पीड़ा देने में नियोजित होने लगे, तो आप की कौन पूजा करेगा? पाशव बल ही यदि जगत में पूज्य होता तो सिंह, व्याघ्र, हाथी, गेंडा आदि भी देवताओं के सिंहासन पर अधिकार कर लेते। परोपकार वृत्ति ही पूज्य होने का अधिकार प्रदान करती है। आकाश मण्डल में सूर्य से बहुत बड़े बड़े ज्योतिष्य मण्डल हैं, किन्तु वे सूर्य की तरह पूज्य क्यों नहीं हैं? सूर्य जिस तरह जगत का कल्याण करने में नियुक्त है; वे उस तरह न होने से। सूर्य कभी आपसे पूजा नहीं चाहते, किन्तु सूर्य की परोपकार वृत्ति स्मरण करके आप स्वतः प्रवृत्त होकर उनके लिये शिर झुकाते हैं, शिर झुकाने को तुम्हें कोई बाध्य नहीं करता, कोई बाह्य बल प्रयोग नहीं करता।

आप वृहस्पति से भी बढ़ कर शास्त्राभिज्ञ हो सकते हैं, किन्तु आप का ज्ञान यदि संसार चक्र के आवर्तन के अनुकूल न हो तो आपके ज्ञान का फल क्या हुआ। बन्ध्या स्त्री क्या कभी पुत्रवती के स्थान पर अधिकार पा सकती है? पत्नी रूप गुण सम्पन्न होने पर भी यदि बन्ध्या हो तो स्वामी के चित्त का अभाव दूर नहीं होता। पुत्र के अभाव से पत्नी पत्नी तुल्य नहीं है। बड़े यत्न से पाले हुए वृक्ष पर यदि फल न आवें तो मनुष्य उसे कुठार से कटवा डालते हैं। अतएव परोपकार वृत्ति ही जगत में आद्दत और जगत में पूज्य होने का एक मात्र कारण है। आपके भण्डार में यदि अक्षय धन रहे, पर वह दीन दुखियों के दुख निवारण में न खर्च किया जाय, तो आपके धन का मूल्य क्या? सागर गर्भ अथवा खान में भी तो धन रत्न निहित हैं। खान का धन यदि खान में ही रह जाय, मनुष्य यदि उसे जगत के व्यवहार में न ला सके तो वह धन न रहने के समान है। दरिद्रता सदा ही धनवान् कृपण के पूज्य हुआ करते हैं। परोपकार वृत्ति अहंभाव का प्रसार ही मनुष्य से मनुष्य की पूजा कराता है। अहंभाव के प्रसार के कारण ही मनुष्य पशु पक्षियों से श्रेष्ठ है, पशु पक्षी वृक्षादि से श्रेष्ठ हैं और वृक्षादि प्रसार आदि से श्रेष्ठ हैं। अहंभाव के प्रसार के कारण ही वैश्य शूद्र से, क्षत्रिय वैश्य से और ब्राह्मण क्षत्रिय से श्रेष्ठ है। जो जितना अपना पराया भेद ज्ञान नष्ट कर सके, जो जितना पर को अपना जान सके, जो जितना अपने को भूलकर पर के साथ अपने को मिला सके, जो जितना तामसिक "मैं" को राजसिक "मैं" और राजसिक "मैं" को सात्विक "मैं" कर सके, वह उतना ही पूज्य है। जो आब्राह्मण चाण्डाल पर्यन्त किसी के भी पद प्रान्त में पड़ने से कुण्ठित न हो, कभी परायापूज्य होने की उच्च अभिलाषा न करे, जो कभी पूजा न पाने से उद्विग्न चित्त न हो और पूजा पाने पर भी कभी उन्मत्त चित्त न हो, उसके पाँवों पर पड़ने में, पदरज शिर पर धारण करने में, उसका पादोदक पान करने में किसी को भी आपत्ति न होगी।

फिर जिज्ञासा करते हैं कि ब्राह्मण जो हिन्दू समाज में देव तुल्य पूज्य हैं, परब्रह्म के अवतार भगवान श्री कृष्ण के भी आराध्य थे, उसका गूढ़ रहस्य क्या है? पाठक! विचार देखिये, इसका कारण क्या है? इसका कारण परोपकार वृत्ति, इसका कारण अहङ्कार का नाश, इसका कारण सब भूतों में आत्मदर्शन और आत्मा में सर्वभूत-दर्शन, इसका कारण "ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भक्ति" इसका कारण है एक प्रकार से अहंभाव का प्रसार।

आवश्यकताओं की पूर्ति

मनुष्य को कितनी ही वस्तुओं की आवश्यकता रहती है। उसका दैनिक कार्य-क्रम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये होता है। भोजन वस्त्र ही मनुष्य की आवश्यकता नहीं हैं, इनकी पूर्ति तो बड़ी ही आसानी से और कुछ ही घंटे परिश्रम करने पर हो सकती है, इन्हें कमाने में ही वह सारी आयु नहीं लगाता, वरन् वह अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाता है, और उनकी विस्तृत पूर्ति के प्रयत्न करने में अपनी आयु का अधिक भाग लगाता है। इन आवश्यकताओं में कुछ तो उचित भी होती हैं, परन्तु इनमें से काल्पनिक होती हैं और उनकी पूर्ति प्रायः कसी प्रकार नहीं हो पाती, जितनी ही उनकी पुष्टि की जाती है, उतनी ही वे और अधिक तीव्र हो जाती हैं। रहने के लिए मकान चाहिए, जब मिल जाता है और बढ़िया के लिए मन चलता है, कपडा चाहिए, परन्तु मिल जाने पर उससे अधिक मूल्यवान की इच्छा होती है, सवारी चाहिए, घोड़ा मिलने पर मोटर की जरूरत मालूम पड़ती है, भोजन चाहिए परन्तु उसके बाद षट्रस व्यंजन और बहुमत्य पदार्थ मिलने चाहिए। इसी प्रकार सन्तान की वृद्धि अपेक्षित होती हैं. धन तो कहना ही क्या, जितना मिल जाय उतना ही कम है। यश और कीर्ति मे कोई नहीं अघाता, अधिक बलवान, अधिक सुन्दर अधिक बुद्धिमान बनने की इच्छाओं से मनुष्य उद्विग्न बने रहते हैं,। अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए साधक और सुविधाएें। जुटाते हैं, शक्ति भर प्रयत्न करते हैं, दिन रात जुटे रहते हैं, परन्तु जो फल प्राप्त होता है बहुत ही तुच्छ जान पड़ता है, उससे बिलकुल सन्तोष नहीं होता। असन्तोष और अभाव के कष्ट से वे सदा व्यथित बने रहते हैं।

बहुत प्राप्त करने की व्यथा जब मनुष्य की मर्यादा से बाहर चली जाती है, तो वह बड़ी ही क्रूर रूप धारण करती है, धन की लोलुपता जब बढ़ती है तो मनुष्य भेड़िया बन जाता है, हत्या, चोरी, छल अत्याचार जो कुछ भी वह जितनी भी मात्रा में कर सकता है, करता है। धन हरण करने के लिए डाकुओं द्वारा निरपराध व्यक्तियों को जो यंत्रणाऐं दी जाती हैं; उनके सम्वाद नित्य हमारे कान फाड़ते रहते हैं, अपनी अमूल्य व्यय करके एक एक पैसा बचा-कर कोई व्यक्ति अपनी सन्तान की शिक्षा बुढ़ापे की सहायता के लिए कुछ धन जोड़ता है, परन्तु दूसरा मनुष्य उसे चुराकर छल पूर्वक या अत्याचार से हरण कर लेता है। इस पर उस कमाने वाले व्यक्ति को कितना दुख होता है। इसे वही जानता है, किन्तु चोर तो भेड़िया बन चुका है उसे अपनी रक्त पिपासा शान्त करने के लिए इस बात से कुछ प्रयोजन नहीं कि जिसका रक्त मैं पान कर रहा हूँ, वह भी मेरे ही समान जीवधारी है, वह भी समान दुख में छटपटाता है, मनुष्य की यह अतृप्ति सभी दिशाओं में बढ़ती है। अपनी काम वासना की तृप्ति के लिये असंख्य वृद्ध पुरुष पुत्री जैसी सुकुमार कन्याओं का जीवन पैरों तले कुचल डालते हैं, फुसला कर धोखा देकर विवश करके एवं बलात्कार पूर्वक नारी जाति को पीड़ायें दी जा रही हैं, उन्हें देख कर निर्दयता भी पसीज उठती है। जब अतृप्त आवश्यकताऐं सामूहिक रूप धारण करके राजनीति या कूटनीति का भड़कीला जामा पहिन कर बाहर आती हैं तो वे विद्या और बुद्धि की चमचमाहट से लोगों की आंखों को चौंधिया देती और बड़े बड़े सामूहिक शोषण एवं रक्तपात की सृष्टि करती हैं। हम देखते हैं, कि आज एक देश दूसरे देश का शोषण करने के लिऐ जोंक बनकर चिपटा हुआ है। महायुद्ध का राक्षस असंख्य निरपराध व्यक्तियोंके पावन शरीरोंको काटे डाल रहा है, और रक्त की नदियाँ बहा रहा है सामूहिक रूप से या अलग अलग व्यक्तियों द्वारा निजी तौर पर चाहे किसी तरह सही एक ही कार्य को दुहराया जाता है। हम देखते हैं, कि लोग अपनी सगी कन्याओं को पैसे के बदले बेच कर उन्हें जीवन

महानात्माओं की कृपादृष्टि

[ले०—पं० भोजराज शुक्ल, ऐत्मादपुर, आगरा]

दक्षिण देश के एक नगर में धनमदान्ध एक बनियाँ रहता था, वह अपने तुल्य किसी को भी बुद्धिमान् और धनी नहीं जानता था। रात दिन धन कमाने की चिन्ता में लगा रहता था, कभी भी किसी साधु महात्मा तथा ब्राह्मण का सत्कार नहीं करता था, भूल कर भी ईश्वर का नाम नहीं लेता था। दैव योग से एक दिन एक महात्मा उस रास्ते से आ निकले जहाँ पर उस बनिये की दूकान थी। महात्मा उसकी दूकान के सामने जाकर खड़े हो गये और उस बनिये की तरफ देखने लगे। वह बनियाँ अपने धन के मद से ऐसा उन्मत्त था कि उसने आँख उठा कर भी महात्मा की तरफ़ नहीं देखा, क्यों कि धन का मद बड़ा भारी होता है।

यह दशा देखकर महात्मा को अपने दयालु स्वभाव से उस बनिये पर दया आ गई। मन में सोचा कि इसको इस कीचड़ से निकालना चाहिये। ऐसा विचार करके उस बनिये से कहा कि "राम २ कहो" उसने महात्मा की तरफ न देखा न बोला, जब कि दो तीन बार कहने से भी वह बनियाँ न बोला तब महात्मा ने सोचा कि यह महा मूर्ख तथा अभिमानी है, इस प्रकार यह न मानेगा, इसको दण्ड दिया जावेगा, ऐसा विचार कर महात्मा उस नगर के समीप बहने वाली नदी के तीर पर चले गये। प्रातः काल जब वह बनियाँ नदी पर स्नान करने को गया। तब महात्मा ने अपने योग-बल से अपना रूप उस बनिये के रूप के समान बना लिया, वह तो अभी स्नान ही कर रहा था, महात्मा उस बनिये का रूप धारण करके उसके घर की तरफ चल दिये। घर पर पहुँचते ही उस बनिये के लड़कों ने देखा कि पिता जी आज जल्दी स्नान करके आ गये, पूछा कि पिता जी! आज जल्दी आने का क्या कारण है? महात्माने उत्तर दिया कि "आज एक इन्द्रजाली हमारी सूरत बना कर आवेगा, हम देख आये हैं। वह चाहें जिसकी सूरत बना लेता है। तुम लोगों को सजग रहना चाहिये। जब वह तुम्हारे यहाँ आवे उसे घर में मत घुसने देना, धक्के देकर निकाल देना, यदि वह घर में घुसने का आग्रह करे तो दो चार जूते भी लगा देना" ऐसा कह कर महात्मा जी भोजन करके घर के कमरे में पलङ्ग पर लेट गए।

उधर बनियां स्नान करके घर को आया, ज्यों ही घर में घुसने लगा, उसके छोटे पुत्र ने डाटा, कहने लगा कौन है, किधर जाता है। बनियाँ बोला क्या तुमने भांग पी ली है, जो पागलों की सी बातें करते हो। यह कहकर घर में घुसने लगा, छोटे लड़के ने हाथ पकड़ कर बनिये को दरवाज़े से बाहर कर दिया, कहने लगा कि मेरे पिता जी तो कमरे में लेटे हैं, तू तो मायावी [इन्द्रजाली] है। मेरे पिता का रूप बनाकर घर में घुसना चाहता है, बनियाँ घबड़ाकर कहने लगा कि बेटा बाप तो तुम्हारा मैं ही हूँ, मुझे घर में जाने से क्यों रोकते हो. भोजन पाकर झटपट दूकान पर जाऊँ। ग्राहक लौटे जाते होंगे, क्या तुमको किसी ने बहका दिया है, जो मेरे जीते जी मेरी सम्पत्ति के मालिक बन के मुझे निकाल देना चाहते हो। इतने में बड़ा लड़का भी आ गया। दोनों ने मिलकर उसे खूब पीटा धक्के लगाकर घर से दूर भगा दिया।

बनिये ने जाकर उस शहर के हाकिम से फ़रयाद की कि मेरे बेटों ने मुझे घर से निकाल दिया है, मेरी सम्पत्ति अपने अधिकार में करली है। हाकिम ने बनिये के दोनों लड़कों को बुलाकर कुल हाल पूछा, उन्होंने उत्तर दिया कि हुजूर हमारे पिता जी तो घर में मौजूद हैं। यह तो कोई बहुरूपिया—ठग है, जो हमारे पिता जी का रूप बना कर घर में घुसकर हमको ठगना चाहता है। हाकिम ने लड़कों से कहा कि अच्छा अपने पिता जी को घर से लिवा लाओ, लड़के अपने पिता जी [महात्मा]

कहानी

थूकने योग्य स्थान !

(श्री० मंगलचंद भंडारी 'मंगल, देवास सीनियर)

वह भवन उस नगरी में अद्वितीय बना था, यों तो कितनी ही विशाल इमारतों से वह नगर सुशोभित था, पर इतना सुन्दर और भव्य दूसरा न था, देश विदेश से बहुमूल्य पत्थर मँगा कर उसमें लगाये गये थे, सैकड़ों कुशल कारीगरों ने वर्षों तक अपनी बुद्धि का सर्वोत्तम प्रयोग इसके बनाने में किया था तब कहीं वह भवन बन कर तैयार हुआ था। जिस धनी पुरुष ने उसे बनवाया था उसने उसकी सजावट में भी रुपया पानी की तरह खर्च किया। कीमती गलीचे, बहु मूल्य काँच, मखमल मढ़ी हुई कुर्सियाँ और रत्नजटित बन्दनवारों से सजे हुए कमरे आँखों में चकाचौंध करते थे। प्रशंसा सुन कर दूर दूर से लोग उस विशाल भवन को देखने आये। सेठ प्रसन्नता पूर्वक सब को दिखाता और लोगों के मुँह से अपनी प्रशंसा सुन कर बहुत प्रसन्न होता।

एक दिन दैवयोग से एक साधु उधर आ निकले, भवन की इतनी प्रशंशा सुनी तो वह भी उसे देखने के लिये चल दिये, वह साधु बड़े पहुँचे हुए थे, उनके ज्ञानवैराग्य की बहुत ख्याति थी, लोग उन्हें देवता तुल्य पूजते।

सेठ ने सुना कि अमुक साधु मेरा भवन देखने आ रहे हैं तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई, दरवाजे पर अगवानी करने खुद पहुँचा और आदर से उन्हें साथ लेवा लाया, हँस हँस कर उसने भवन के सारे विभाग कार्यगृह, आमोद गृह, शयनागार, अट्टालिकाएँ और उपवन दिखाये, हर स्थान पर लगी हुई विशेषता प्राप्त वस्तुओं का भी परिचय कराया और बताया कि कितनी चातुरी, धन व्यय एवं कला का समन्वय करके यह विशाल भवन निर्माण कराया है।

साधु सेठ के मुँह से उन विभिन्न वस्तुओं का परिचय प्राप्त करके प्रसन्न होते जाते थे! सभी जगह उन्होंने बड़ी ही सजावट और सफाई देखी। उन्हें थूकने की जरूरत पड़ी परन्तु कोई उपयुक्त स्थान न देख कर उन्होंने उस इच्छा को दबाया। सेठ जब भवन के सम्पूर्ण विभाग दिखा चुका तो साधु ने पूछा—"श्रीमान् ! इसमें पासना गृह कहाँ है? आप जहाँ बैठ कर आत्म चिन्तन करते हैं वह स्थान मेरे देखने में नहीं आया, कृपया उस स्थान को भी दिखाइये, उसे देखने के लिये मैं विशेष उत्सुक हूँ।"

सेठ को कभी उपासना गृह की आवश्यकता प्रतीत न हुई थी, धन वैभव से चौंधिया जाने वाले अन्य अनेक नर-कीटों की तरह वे भी मनुष्य के असली अस्तित्व से अपरिचित थे। जब धन है तो ईश्वर से क्या प्रयोजन? जब सुख है तो आत्म चिन्तन से क्या लाभ? जब स्वस्थ हैं तो भविष्य की क्या चिन्ता! शक्ति के अहंकार में मनुष्य अन्धा हो जाता है। धन के मद में सेठ जी की भी वैसी ही दशा थी। उपासना की भी कोई जरूरत है? इस प्रश्न पर कुछ सोचने की उन्हें कभी फुरसत नहीं मिली थी। साधु के प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने लापरवाही से कहा—'वह तो मैंने नहीं बनवाया है।'

साधु सेठ के अज्ञान को शुरू से ही समझ रहे थे। मकान देखने और प्रश्न पूछने का उनका कुछ विशेष उद्देश्य था। इमारतें उन्होंने बहुत देखी थीं वे आज उसका तमाशा देखने नहीं आये थे अपनी सहज उदारता का प्रसाद उस अज्ञ प्राणी को देने आये थे। उन्होंने बस यही ठीक अवसर समझा और बहुत देर से थूकने के लिये जो स्थान ढूंढ रहे थे उसे देख लिया। साधु गला खोल कर खाँसे और एक बड़ा सा ढेला कफ सेठ के मुँह पर थूक दिया।

* * *

घृणित! बीभत्स! बेशर्मी! जंगलीपन! अपराध! चारों ओर से यही शब्द सुनाई पड़ने लगे। सेठ के नौकरों ने साधु को पकड़ लिया और उसे

मारने को उद्यत होगये। सेवक लोग दौड़े, तुरन्त ही जल लाया गया, उन्होंने उस थूक को धोया और स्नान कराया। स्नान करने के उपरान्त क्रोध कुछ शान्त हो चला था, साधु से बदला लेने के जो भाव उसके हृदय में जल रहे थे वे अब कुछ ठण्डे हो चुके थे। उसने सोचा इस हरकत की बाबत अपराधी से एकबार पूछ क्यों न लिया जाय?

सेठ ने साधु को बुला कर भवें तरेरते हुए पूछा—क्यों मेरे मुँह पर थूका था? साधु और अधिक नम्र बन गये, उन्होंने कहा—भगवन्! मुझे बहुत देर से थूकने की इच्छा सता रही थी, आप मुझे सब विमाग दिखा रहे थे पर मैं थूकने का स्थान ढूंढ़ रहा था। जब आपने बताया कि इतने बहु मूल्य भवन का निर्माण करते हुए भी इसमें उपासना गृह नहीं बनवाया है तो मुझे लगा कि आपका मुँह ही थूक देने योग्य स्थान है। अस्तु मैंने थूक दिया।

सेठ के पूर्व संस्कार एक ठोकर खाकर जागृत हो उठे। सचमुच, जो मनुष्य बाहरी ठाट बाट में इतनी दिलचस्पी लाता है किन्तु आत्मचिन्तन से उदासीन है वह बहुत ही घृणित कर्म में प्रवृत है और उसका मुँह थूक देने योग्य ही स्थान है। धनपति अपनी गरीबी को समझ गया। उसने साधु के चरण पकड़ लिये और अपनी भूल सुधारने की प्रतिज्ञा करली।

शान्ति तो तुम्हारे अन्दर हैं। कामनारूपी डाकिनी का आवेश उतरा कि शान्ति के दर्शन हुए। वैराग्य के महामन्त्र स का ना को भगा दो, फिर देखो सर्वत्र शान्ति की शान्त मूर्ति।

* * *

किसी भी अवस्था में मन को व्यक्ति मत होने दो, याद रक्खो परमात्मा के यहाँ कभी भूल नहीं होती और न उसका कोई विधान दया से रहित ही होता है।

* * *

इच्छा और सफलता

[धर्माचार्य सच्चिदानन्द शास्त्री बदायूँ]

इच्छा शक्ति एक प्रचण्ड बल है। मनुष्य जीवन का यही बिजली-घर है। इस शक्ति का जो जैसा उपयोग करता है वह वैसा ही बन जाता है। आग में जलाने की ताक़त मौजूद है। कोई इस ताक़त को भली ओर लगाता है, कोई बुरी ओर। वैज्ञानिक और शिल्पी लोग इसकी सहायता से भाप बना कर कल कारखाने चलाते और तरह तरह की चीज़ें तैयार करते हैं। पण्डित हवन करके इसके द्वारा वायु शुद्ध करते हैं और चोर, डाकू, लुटेरे आग लगाकर गाँवके गाँव तवाह कर देते हैं-सैकड़ों को अनाथ बना देते हैं। शक्ति का क्या परिणाम होगा, यह प्रयोग करने वालों की इच्छा पर निर्भर है।

ईश्वर को प्राप्त करने की इच्छा से कितने ही अज्ञात पुरुष पर्वतों की गुफाओं में बैठे हुए तप कर रहे हैं। मनुष्य यदि अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये दृढ संकल्प करले तो शरीर का दुख-कष्ट कोई बाधा खड़ी नहीं कर सकता। पहाड़ से निकला हुआ पानी का झरना जैसे सामने की शिलाओं और पत्थरों को तोड़ता फोड़ता अपना रस्ता बना लेता है वैसे ही दृढ़ इच्छा शक्ति भी विघ्नोंको हटाकर सफलता तक पहुँचा देती है।

मनुष्य यदि किसी विषय पर विचार करके 'करूँगा" स्थिर करले तो उसे करने में वह अपने शरीर तक को होम सकता है, ऐसी दशा में कोई कारण नहीं कि सफलता न मिले। सर्व शक्तिवान् मंगलमय परमात्मा ने मनुष्य के भीतर यह महा-शक्ति रखी है। हम इस महाशक्ति के माहात्म्य को नहीं समझते। बहुतों को तो इसके अस्तित्व का भी ज्ञान नहीं। पर यह निश्चित है कि इस शक्ति की सहायता बिना कोई सफलता के प्राप्त नहीं कर सकता।

मनके संयम का अनुभव

(ले० आनन्दकुमार चतुर्वेदी " कुमार " छिबरामऊ)

संसार में कई प्रकार के बल परमात्मा ने बनाये हैं, यथा, आत्मबल, मनोबल, विद्याबल, बुद्धिबल, तनबल, धनबल इत्यादि आज मैं पाठकों को मनोबल पर लेख लिख कर उत्साह दिलाना चाहता हूँ।

मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः।
बंधाय विषयासक्तं, मुक्तौ निर्विषयं स्मृतम् ॥

मनुष्यों की पराधीनता तथा स्वतन्त्रता का कारण केवल मन ही है, जो मनुष्य संसारी भोग विलासों में आसक्त है, वह पराधीन हैं, तथा जो भोग विलासों में अनासक्त हैं, वही स्वतन्त्र हैं। मनुष्य जब सिंह तथा हाथी को अपने वश में कर लेता है, तब उनसे चाहे जो कुछ काम ले सकता है, कठिन से कठिन कार्य करा सकता है, जैसा कि प्रायः सरकसों में देखने में आता है। यदि सिंह तथा हाथी काबू हो जाते हैं, तो सरकस के खिलाड़ी को मार डालते हैं।। इसी प्रकार इस मन रूपी सिंह या हाथी को आप वश में करके इससे कठिन से कठिन काम ले सकते हैं, अपितु परमात्मा को भी प्राप्त कर सकते हैं। यदि आप मन के वश में हो गये तो यह भूत मार कर ही पीछा छोड़ता है, यथा रौरव नर्क की यातनाएं भुगाता है. मनोबल से ही मनुष्य दूसरों के हृदय की बात तुरन्त जान लेता है, तथा दूर देशका हाल कह देता है, भविष्य वक्ता भी हो सकता है। मनोबल से ही एक साधु ने रेलगाड़ी को चलने से रोक दिया था, मेसमेरेजिम, मेन्टल टेलीग्राफी इत्यादि मनोबल से ही सफल होती हैं, पाश्चात्य देश निवासी इन आविष्कारों को दिखा कर मनुष्यों को अचम्भे में डाल रहे हैं महात्मा संजय धृतराष्ट्र को इन्द्रप्रस्थ (देहली) में बैठे हुये कुरुक्षेत्र के महाभारत का युद्ध समाचार प्रतिदिन सुनाते थे। इसी से राजर्षि विश्वामित्र ने दूसरी सृष्टि रच दी थी, मनोबल ही ही स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जङ्गली रीछ को अपने सामने से भगा दिया था। मनोबल से ही महात्मा गाँधी की आज्ञानुसार करोड़ों भारतवासी उनकी, आज्ञा पालन करने को तैयार हैं।

अब यह प्रश्न उठता है, कि मनोबल प्राप्त हो कैसे ? इसका उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है, कि मन को स्थिर करके उसे बलवान बनाना चाहिये क्यों कि मन की चंचलता मन को कमज़ोर बनाती रहती है। मनकी चंचलता विशेष कर प्राणायाम ही से दूर होती है, परन्तु और भी ऐसे साधन हैं, जिन से मन की चंचलता न्यून हो सकती है। मैं स्वयम् ९ बष से (Bone T. B,) में ग्रसित हूँ, परन्तु परन्तु अपने मनोबल ही से इस शत्रु से संग्राम कर रहा हूँ। उसका अपने ऊपर काबू नहीं होते देता, उससे महीने दो महीने में तुमुल युद्ध हो ही जाता है, पर मैं तनिक भी परवाह नहीं करता, कारण यही है कि मैंने अपने मनको आधीन कर रक्खा है, पूर्ण संयम से रहता हूं मन को किन किन उपायों से तथा साधनों से क़ाबू में किया है, उन्हें पाठकों की भेंट करता हूं। मैं पालती ही मार कर बैठता हूँ. अपने मेरु दण्ड (रीढ़) को सदैव सीधा रखता हूं अर्थात् गर्दन और पीठ तथा उदर बराबर सीधे रख कर अपनी दृष्टि को नाभिस्थल (ढुंडी) पर जमाये रहता हूं, उस समय अपने इष्ट देव कृष्ण भगवान का ध्यान करता हूं, जब मन अपने स्वभावानुसार किसी संसारी विषय में चलायमान हो जाता है, तब मन जिस विषय को दौड़ता है, उसी विषय में मन को लगाकर भगवान का ध्यान करने लगता हूं। इस से मनको शान्ति हो जाती है। प्रति दिन के छोटे २ कामों के करते समय उसी कार्य्य में चित्त की वृत्ति रखता हूँ, फिर दूसरी तरफ वृत्ति को नहीं जाने देता जब स्नान करता हूँ तब यही विचार रखता हूँ कि स्नान से मेरा शरीर शुद्ध हो रहा है और रोमरन्ध्र स्वच्छ हो रहे हैं जिन से दूषित विकार निकल रहे हैं।

आत्म विश्वास का अभाव।

प्रसन्न रहने वाले व्यक्ति को देखकर दुःखी लोगों के चहरे पर भी मुसकराहट आजाती है, किन्तु निराश और उदासीन को देखकर प्रसन्न लोगों को भी दुख होता है। निराश रहने का कारण है आत्म विश्वास का अभाव। कायरता आत्मनिर्बलता मनुष्य की जन्म-जात शत्रु है। आत्म विश्वास का अभाव एक ऐसी ऐनक है, जिसे पहन लेने पर सब चीजें भय और दुख के रंग में रंगी हुई दिखाई पड़ती हैं। उदास स्वभाव के मनुष्य को यदि एक तिनके की बराबर हानि होजाय तो वह समझता है कि मेरा सर्वस्व चला गया। मेरी सारी संपदा नष्ट होगई। जब जरा जरा सी बातों में इतना उद्वेग होता है, तो किसी महत्व पूर्ण विषय पर गंभीरता के साथ विचार करने के लिए उसके मस्तिष्क में स्थान नहीं बच पाता।

आत्म विश्वास का अभाव, अन्य प्रकार के अभाव: अपने भाई बन्धुओं को बुलाता है, जैसे कोई खाने की वस्तु मिलने पर कौआ काँव काँव करके अन्य कौओं को बुला लेता है। कायरता हमारे हाथों को बांध देती है और सद्गुणों पर आलस्य का पर्दा डाल देती है और जीवन के वास्तविक आनन्द का गला घोंट कर हत्या कर देती है। एक महापुरुष का कथन है कि आंधी के झोंके से टूट कर गिरे हुये वृक्ष में फिर उठने की शक्ति नहीं रहती, उसी प्रकार निराशा के भार से दबा हुआ मनुष्य अपाहिज बन जाता है। जैसे पहाड़ से नीचे बहने वाला पानी बरफ को भी अपने साथ बहा लेता है, वैसे ही आँसू जब बहते हैं, तो चहरे की सुन्दरता को भी बहा ले जाते हैं। तेजाब में पड़ा हुआ मोती पहले मैला होता है, फिर गल जाता है, उसी तरह निराशा पहले मनुष्य को निर्बल बनाती है, फिर उसे खा जाती है।

आत्मा को दुर्बल बनाने वाला, उत्साह को नष्ट करने वाला, सफलता के आसन पर विफलता को बिठाने वाला केवल एक ही शत्रु है और वह है आत्म विश्वास का अभाव। इस शत्रु से सावधान रहो। जब जरा भी उदासीनता या निराशा के भाव मन में उत्पन्न होने लगें, तो तुरन्त सावधान हो जाओ। अपने आत्मा को समझो। जैसे ही तुम अपनी महान् शक्ति को पहचानते हो; वैसे ही कमजोरी के विचार स्वयंमेव चले जाते हैं। उस उदासीन मनुष्य को देखो, जड़ कटे हुए पौधे की तरह शिर झुकाये और आँखें नीची किये हुए खड़ा है। क्या अपने लिए तुम ऐसी स्थिति ही पसन्द करोगे?

जब भोजन करता हूँ तब विचार करता हूँ, कि श्रीकृष्ण भगवान का अमृतोपम प्रसाद पा रहा हूँ, जिससे मुझे शान्ति प्रदान होगी। मुझ में बल वीर्य्य बढ़ेगा। इत्यादि। इससे मनको रोकने की आदत पड़ गई है, उनकी चंचलता कम हो गई है।

यत्र यत्र मनोयाति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात्,।
मनसो धारणश्चैव धारणा सा परा मता॥
(त्रिपंचाग योग)

अर्थ—मन जिस २ विषय में दौड़े उसी २ विषय में श्री भगवान का दर्शन करें, आत्मानुभाव में सम रस ज्ञान करते हुए सर्वत्र भगवान का विचार कर मनमें धारणा करनी चाहिये, यही सुगम उपाय मन को क़ाबू में करने के हैं। मेरे स्वयं अनुभव में आरहे हैं, मैं आशा करता हूँ कि पाठक इससे लाभ उठायेंगे जैसा कि मैं उठा रहा हूँ।

नित्य हँसमुख रहो मुख को कभी मलीन न करो, यह निश्चय कर लो कि शोक ने तुम्हारे लिये जगत् में जन्म ही नहीं लिया है। आनन्द स्वरूप में सिवा हँसने के चिन्ता को स्थान ही कहाँ है?

* * *

आत्म शक्ति का विकास

(ले० – श्री आचार्य भद्रसेनजी, अजमेर)

गत लेख मे बतलाया जा चुका है कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य अपनी आत्मिक शक्तियों का विकास करना है, क्योंकि आत्मा महान् तथा दिव्य शक्तियों का भण्डार है। सुख और शान्ति का आगार है। हम अपने आत्म स्वरूप तथा उसके सच्चे आनन्द को भूल कर ही संसार के क्षणिक सुखों में आसक्त होकर उनकी प्राप्ति के लिये सांसारिक विषयों में भटक रहे हैं। यदि हम अपने महान् आत्मा की थोड़ी सी भी झांकी प्राप्त कर लें. यदि उसके शतांश आनन्द का भी आस्वादन कर लें, तो यह ध्रुव सत्य है कि फिर हमें सांसारिक विषयों का क्षणिक सुख बिलकुल नीरस प्रतीत होने लगेगा, जिसने मधु के स्वाद को नहीं चखा, वह गुड़ की मिठास में ही आनन्द मानता है और उसकी प्राप्ति के लिये उचिताऽनुचित तरीके से रात दिन प्रयत्न करता है। किन्तु जो मनुष्य एक बार मधु के माधुर्य का आस्वादन कर लेता है, वह फिर गुड़ में आसक्त नहीं होता। उसे गुड़ का माधुर्य मधु के माधुर्य के सामने बिलकुल तुच्छ प्रतीत होने लगता है।। अतः सच्चे सुख और शान्ति के अभिलाषी का परम कर्तव्य है कि वह अपने आत्म स्वरूप को साक्षात करे। अथात् अपनी आत्मिक शक्तियों का विकास करे। आत्म शक्तियों के विकास के यों तो हमारे ऋषि; मुनि, योगी, महात्माओं ने बहुत से उपाय बतलाये हैं। किन्तु मेरे विचार में आत्मिक शक्तियों के विकास के मुख्यतया दो ही साधन हैं। वे हैं…

" आत्म चिन्तन " तथा " प्रभुभक्ति "

दूसरे शब्दों में जिसे ' योग " और " भक्ति " के नाम से भी कहा जा सकता है। तथा जिसे योगी लोग " राज योग " और " भक्ति योग " के नाम भी पुकारते हैं। योग दर्शन के " तज्जपस्तदर्थं भावेनम् " इस सूत्रका भाष्य करते हुए महर्षि व्यास लिखते हैं– " प्रभु प्राप्ति और आत्म साक्षात्कार अभिलाषी को कर्तव्य है कि वह स्वाध्याय अर्थात् प्रभु भक्ति से योग को प्राप्त करे और योग से प्रभु भक्ति में स्थित हो। क्योंकि " प्रभु भक्ति " तथा योग अर्थात् आत्म चिन्तन इन दोनों की सहायता से ही भक्त के हृदय में अपने आत्मा तथा परमात्मा का प्रकाश होता है। तात्पर्य यह है कि आत्म साक्षात्कार के दूसरे शब्दों में अपनी आत्मिक शक्तियों के विकास के दो ही मुख्य साधन हैं " आत्म चिन्तन " तथा " प्रभु भक्ति "। इस लेख में हम–" आत्म चिन्तन " पर प्रकाश डालेंगे।

आत्म चिन्तन का अर्थ है अपने आत्म स्वरूप का चिन्तन करना। अर्थात् मैं कौन हूँ? मेरा क्या स्वरूप है? इस भौतिक जगत से मेरा क्या सम्बन्ध है? मेरे अन्दर कौन २ सी दिव्य शक्तियाँ निहित हैं। इन बातों का सर्वदा चिन्तन करते रहना ही " आत्म-चिन्तन " कहलाता है। इस प्रकार चिन्तन करते रहने से आत्मा की सोई हुई दिव्य तथा महान् शक्तियाँ जागृत होने लगती हैं। जितना २ हम अपने आत्म स्वरूप का मनन करते हैं, उतनी २ हमारी आत्मिक शक्तियां विकसित होती जाती हैं और एक दिन हम महान् तथा दिव्य शक्तियों के स्वामी बन जाते हैं। संसार में आज तक जितने भी ऋषि, मुनि, योगी, यति आदि महापुरुष हुए हैं वे सब अपनी महान् शक्तियों के विकास से ही महान् तथा उच्च बने हैं। इसलिये यदि हम उच्च तथा महान् बनना चाहते हैं, तो हमें भी आत्म चिन्तन द्वारा अपनी आत्मिक शक्तियों का विकास करना चाहिये। अपने आत्मा को प्रेम से समझा कर उसे निज स्वरूप का बोध कराना चाहिये। यों तो आत्मा को जागृत करने के तपश्चर्या आदि अनेक साधन हैं। किन्तु जितना शीघ्र आत्मा को प्रेम से समझाने से अर्थात् आत्मा की अद्भुत शक्तियों का " आत्म-चिन्तन " द्वारा उसे बोध कराने से हमारा आत्मा जागृत हो सकता है, उतना कठोरता के साधनों से

नहीं। जगाता रास्ते पर सोए हुए मनुष्य को सिपाही भी है और घर में सोये हुए बालक को माता भी। किन्तु दोनों के जगाने में महान् अन्तर है। सिपाही जब रास्ते पर सोए हुए मनुष्य को "हंटर" मार कर जगाता है, तो वह मनुष्य जाग तो जाता है, किन्तु उसके शरीर में आलस्य और तन्द्रा ज्यों की त्यों बनी रहती है। उसमें न स्फूर्ति होती है, न उत्साह। इतना ही नहीं प्रत्युत् सिपाही के चले जाने पर वह मौका पाकर फिर सो जाता है। किन्तु जब माता बच्चे को प्रेम से लोरियां देकर जगाती है, तो बच्चा आलस्य को छोड़ तत्काल उठ बैठता है। उस समय उसके शरीर में स्फूर्ति और उत्साह होता है और वह एक बार जाग जाने पर फिर नहीं सोता। इसी प्रकार जब हम अपने आत्मा को तपश्चर्या आदि कठोर साधनों से जगाया करते हैं, तो वह जाग तो अवश्य जाता है, किन्तु उसके अन्दर वह स्फूर्ति, आनन्द और उत्साह नहीं होता, जैसा कि प्रेम से आत्म-चिन्तन द्वारा जगाने से होती है। इतना ही नहीं प्रत्युत सिपाही के हन्टर से जागे हुए मनुष्य की तरह तपश्चर्या आदि कठोर साधनों के अभाव में आत्मा के पुनः खो जाने की भी आशङ्का बनी रहती है। इस लिए हमें अपने आत्मा को "आत्म चिन्तन" द्वारा अर्थात् माता की तरह प्रेम की लोरियाँ देकर ही जगाना चाहिये, कठोरता के साधनों से नहीं। इतना ही नहीं प्रत्युत यदि हमारा आत्मा कभी किसी बुराई में भी फँसने लगे, तब भी उसे प्रेम से ही समझाना चाहिये। कि..."ऐ मेरे प्रिय आत्मन्! ऐसा कुत्सित कर्म तेरे लिये योग नहीं। तू महान है, तू ज्ञानवान् है और दिव्य शक्तियों का निधान है। फिर तू ऐसा कुत्सित कर्म क्यों करता है?"

आत्मा को इस प्रकार समझाने से जहां मनुष्य की आत्मिक शक्तियों का विकास होता है, वहां वह बार २ समझाते रहने से बुराइयों और पापों से बच जाता है। प्राचीन समय में हमारी विदुषी मातायें अपने बच्चों को जहां अपनी उपदेश भरी प्रेममयी लोरियों से भौतिक निद्रा से बेदार करती थीं। वह उनकी सोई हुई आत्मा को भी जागृत बना दिया करती थीं। वे बच्चे बाल्यकाल से ही अपनी आत्मिक शक्तियों का विकास करते हुए आगे चल ऋषि, मुनि, महात्मा और योगी बनते थे। महाराणी मन्दालसा जब अपने बच्चों को जगाती तथा खिलाती थी, तो वह उनको इस प्रकार से लोरियां दिया करती थी।.......

शुद्धोऽसि बुद्धोसि निरञ्जशोसि संसार माया परिवर्जितोऽसि। संसार स्वप्नं त्यग मोह निद्रा मन्दालसा पुत्र मुवाच वाच्यम्॥

"हे बच्चे! तू शुद्ध, पवित्र और निर्मल है। तू ज्ञान का भण्डार और अज्ञान से सर्वथा दूर है। तू संसार को मोहनी माया अर्थात् विषय भोगों से सर्वथा परे है। तुझे संसार को कोई भी विषय अपनी ओर नहीं खींच सकता। इसलिये हे प्रिय पुत्र! तू इस क्षण भंगुर संसार के क्षणिक विषयों की लालसा को छोड़ कर, संसार की मोह रूपी निद्रा से जाग और अपने आत्मस्वरूप का साक्षात् क ।"

पाठक देखें कि हमारी प्राचीन विदुषी माताओं की लोरियों में आत्म जागृति के कितने उच्च भाव भरे होते थे। यही कारण है कि मंदालसा स्वयं महाराणी होती हुई भी उसने अपने दोनों राजकुमारों को अपनी उपदेश भरी प्रेममयी लोरियाँ देकर पूर्ण योगी और महात्मा बना दिया था। दूसरी ओर आजकल की हमारी अशिक्षित माताएं हैं कि जो अपने बच्चों के होने पर शादी विवाह का प्रलोभन, या भूत प्रेत और चूहे बिल्ली का डर दिखाना ही अपना कर्तव्य समझती हैं। यही उनकी लोरियों का सार है। यही कारण है कि आज आर्य संतान बाल्यकाल से ही विषय लम्पट, भीरु और कायर बन रही है। मनुष्य का यह स्वभाव है कि जिन विचारों के वाता-वरण में रहता है, वह वैसा ही बन जाता है। जैसे विचारों का वह अहर्निश चिन्तन करता है, वही

विचार उसके जीवन के अङ्ग बन जाते हैं। यदि मनुष्य के दीन, हीन, तथा मलीन हैं, तो वह अवश्य ही दासता प्रिय, दीन-अवस्था वाला, तथा मलीन विचारों वाला बनेगा और यदि उसके विचार उच्च तथा पवित्र हैं, तो वह अवश्य ही उच्च पवित्र तथा महान् बनेगा। संसार की कोई भी शक्ति उसे उच्च तथा महान् बनने से नहीं रोक सकती। इस लिये हमें अपने विचारों को सदा उच्च तथा महान् बनाना चाहिए। अपने आत्मा की दिव्य शक्तियों का चिन्तन करना चाहिये दूसरे शब्दों में अपने आत्मा को मीठी तथा उदात्त लोरियाँ देकर उसे ऊँचा उठाना तथा जागृत करना चाहिये।

जिज्ञासु पाठक पूछेंगे कि प्राचीन काल में तो माताएं बच्चों को लोरियाँ देकर उनकी आत्माओं को जागृत किया करती थीं, तब कहीं जाकर वे बच्चे बड़ी आयु में आत्म चिन्तन द्वारा अपनी आत्मिक शक्तियों को विकसित किया करते थे किन्तु आज तो परिस्थिति इसके सर्वथा विपरीत है। जैसा कि ऊपर वर्णन कर आये हैं। अतः इस समय हम किस के पास जाकर अपने आत्मा को जागृत करने वाली मधुर लोरियों को सुनें? यह बात सत्य है आज कल की हमारी भौतिक मातायें हमें वह अमृत रस भरी पवित्र लोरियां नहीं सुनाती। किन्तु हमारी सच्ची आध्यात्मिक माता जगद् जननी हमें अहर्निश अपने वात्सल्य प्रेम से हमारे हित के लिये लोरियां दे रही है। हमारी उस दिव्य माता ने अपने अमृत-मय पुत्रों को अपने पवित्र वेद ज्ञान में ऐसी प्रेम मई दिव्य रस भरी लोरियां दी हैं कि जिनका यदि हम प्रति दिन प्रेम से ज्ञान करें और उन्हें अपने जीवन चरितार्थ करें तो हम अवश्य अपनी आत्मिक शक्तियों का विकास कर उच्च तथा महान् बन सकते हैं। प्रभु की उन दिव्य लोरियों को हम फिर कभी पाठकों को सुनायेंगे, प्रेमी पाठक इसके लिये ज्योति के आगामी किसी अंक की प्रतीक्षा करें।

धर्म प्रचारक की साधना

(ले०-श्री रामकरणसिंह वैद्य जफरपुर)

धर्म प्रचारकों की साधना बड़ी कठिन और ऊँचे दर्जे की होती है। वे अपनी जिन्दगी में आप बहुत कम सफलता देख पाते हैं। दूसरे प्रकार के काम करने वाले अपने परिश्रम का फल बहुत जल्द-अपनी आँखों के सामने देख लेते हैं, परन्तु धर्म प्रचार 'गङ्गा में जौ बोना' है। पेट काट कर बचाये हुए जौ साधक गंगा के पानी में डालता है, वह बीज बह जाते हैं। पानी के साथ वे किस भूमि में पहुँचेंगे, किस प्रकार उगेंगे, उससे किसका पेट भरेगा, इस बात को वह नहीं देखना चाहता या नहीं देख सकता। धर्म प्रचारक को साधारण जीवन में कष्ट ही कष्ट भोगने पड़ते हैं, पर उसे त्याग और सदुद्देश के कारण जो आत्म शान्ति मिलती है, उसीसे तृप्त हो जाता है।

भगवान् बुद्ध अपने जीवन में अपने उद्देश्यों का प्रचार न देख सके। उनकी मृत्यु के बहुत दिन बाद राजा अशोक के जमाने में उनके सिद्धान्त कहीं फैले महात्मा ईसा जब फाँसी पर चढ़ाये गये तब उनके अनुयायी गिने चुने थे। धर्म का पौदा उनके रक्त से सींचा गया तब कहीं फल फूल सका। मुहम्मद साहबने जन्म भर कितने कष्ट सहे। नानक, कबीर, दयानन्द सदा कष्ट ही पाते रहे।

धर्म प्रचारक का जीवन यथार्थ में त्याग और तपस्या का जीवन है, समाज में जो कुरीतियाँ फैली होती हैं, वह उनके विरुद्ध आवाज उठाता है। अन्धी दुनियाँ को प्राचीनता पसन्द है,नयेपनसे वह डरती है। आपरेशन करने वाला डाक्टर नित्य ही रोगियों के कडुए शब्द सुनता है। अच्छे होने पर आशीर्वाद पाने का जो अवसर आता है उस वक्त डाक्टर हाजिर नहीं रह सकता, और न रहना चाहता है, क्योंकि उसे तो अपना कर्तव्य पूरा करके ही सन्तोष मिल जाता है। यही उसकी दृष्टि में भरपूर नफे का काम है

स्वर योगसे रोग निवारण

(ले०—श्री० नारायणप्रसाद तिवारी 'उज्ज्वल' कान्हीवाड़ा)

सोते समय चित्त होकर नहीं लेटना चाहिये, इससे सुषुम्ना स्वर चल कर विघ्न पैदा होने की संभावना है, ऐसी दशा में अशुभ तथा भयानक स्वप्न दिखाई पड़ते हैं जयावस्था में होकर मस्तक पर पूर्ण चन्द्र के प्रकाश का ध्यान करने से आयु बढ़ती है, शिर पीड़ा तथा कुष्ट रोग का नाश होता है, नेत्रों के सामने सदा पीले रङ्ग का ध्यान रखने से सर्व रोग दमन होते हैं। नित्य प्रति आधा घंटे तक पद्मासन में बैठ जीभ को दातों की जड़ों में दबाने से सर्व रोग शांत होते हैं।

शांति पूर्वक सीधे बैठ कर ओठों को काक चोंचाकृति बनाकर श्वास खींचो और फिर मुँह बन्द कर लो और हवा को इस प्रकार गले से नीचे उतारो, जैसे कि पानी पीते हैं, थोड़ी देर बाद धीरे धीरे नाक द्वारा श्वास को निकाल दो, इस क्रिया को प्रातः सायं व रात्रि को करना चाहिये तथा प्रत्येक बार पांच सात बार करना बस होगा-इससे रक्त शुद्धि होती है, शूल तथा पेट की अन्य बीमारियों के लिये यह क्रिया लाभदायक है, सारांश यह कि सरल क्रिया होते हुए भी अत्यन्त गुण कारक है, हाँ अशुद्ध स्थान में अथवा भोजन के तीन चार घंटे उपरान्त तक यह क्रिया न की जावे, भोजनोपरान्त कम से कम १५ मिनिट आराम किये बिना सफर करना अनुचित है।

स्वर शास्त्र तथा काम शास्त्र का भी सम्बन्ध विचारणीय है। स्त्री वामांगी है यद्यपि इस विद्या से अनभिज्ञ भले ही इसे भ्रम पूर्ण विचार समझ हंसी उड़ावें, किन्तु विषय महत्व पूर्ण है, स्त्री वामांगी होकर जब पुरुष के संसर्ग में आती है तो पुरुष का दक्षिण तथा स्त्री का वाम स्वर चलायमान रहता है, ऐसी दशा में यदि गर्भ स्थित होगा तो अवश्य पुत्र होगा इस विषय पर मैं पहले भी प्रकाश डाल चुका हूँ। पुत्र इच्छुक स्त्री का रजस्वला अवस्था में ४ दिन तक तथा ग्यारहवें और तेरवें दिन का त्याग कर १६ दिन की अवधि के अन्दर रात्रि के चौथे प्रहर में सूर्य स्वर से चन्द्र पान करे। प्रथम प्रहर का गर्भ क्षीणायु, द्वितीय प्रहर का मन्द भाग्य, तृतीय प्रहर का दुष्ट प्रवृति तथा दरिद्र होगा।

अब मैं कुछ अनुभूत प्रयोग लिख कर इस विषय की समाप्ति करता हूँ।

स्मरण शक्ति बढ़ाने के उपायः—जिस बालक की स्मरण शक्ति क्षीण हो उस के सिर पर लकड़ी का छोटा सा टुकड़ा रखो और इस लकड़ी को एक लकड़ी की छोटी सी हथौड़ी से ठोंको, पाठकों ने अनुभव किया होगा कि लोग कभी २ किसी भूली हुई बात स्मरण करने के लिये सिर खुजलाते हैं, अथवा सिर में पेंसिल ठोकने लगते हैं।

आधा औंस शुद्ध घी में दो कागजी नीबू का रस मिला दो फिर इस मिश्रण को एक प्याले में में रख आग पर गरम करो, जब मामूली कुनकुना हो जावे तब बालक को पिलादो, इससे बालक की स्मरण शक्ति तीव्र होगी मस्तिष्क की शक्ति बढ़ेगी नेत्रों की ज्योति भी तीव्र होगी।

लू लगने पर निम्न औषधि लाभदायक पाई गई है:—४-६ सेर सहते हुए गरम पानी में आधा तोला नमक डाल दो और उससे रोगी के सिर को धोओ एक बार में आराम न हो तो यह क्रिया दुहराई जावे अवश्य लाभ होगा।

नमक का दूसरा गुण सर्प विष निवारण है, ठंडे पानी में थोड़ा सा नमक मिलादो सर्प काटे हुए मनुष्य के आँखों में बराबर वह पानी डाला जावे अवश्य लाभ होगा।

बस पाठकों से मेरा यही निवेदन है, कि इन बातों का अनुभव किये बिना केवल मखौल न उड़ावें Experience is a bitter School.

कहानी

माता की ममता

(पं० श्रीराम बाजपेयी)

मैं अपने माँ बाप का इकलौता लड़का हूँ। पिता मुझे छोटी सी अवस्था में असहाय छोड़ कर गुजर गये थे।

बात तब की है, जब मैं छोटा था, मगर नेकी बद की कुछ कुछ तमीज आ चली थी।

माता के साथ छत पर बैठा धूप खा रहा था। सामने बन्दरों की एक सेना निकली। नर बन्दरों में कई बड़े बड़े भिल्ल देखने में आये। बहुत सी बँदरिया अपने छोटे छोटे बच्चों को लिए जाती दिखाई दीं। किसी का बच्चा पीठ पर सवार था, तो कोई अपने बच्चे को पेट से चिपटाये थी। बच्चे देखने में बड़े सुहावने थे। उनके लाल लाल मुंह और सर पर कढ़ी हुई माँग अँगरेजों के बच्चों का भी मात करती थी। माताओं को बच्चे प्यारे थे और बच्चे भी अपनी अपनी माताओं के सिवा किसी दूसरे को कुछ नहीं गनते थे।

इतने ही में सबसे पीछे एक बँदरिया आई। उसके रङ्ग ढङ्ग से मालूम होता था कि वह बड़ी डरती थी। थोड़ा थोड़ा चलकर रुक जाती और चारों तरफ दर्द भरी निगाह से देखती। चलती भी थी, तीन टाँगों से लँगड़ा लँगड़ा कर क्योंकि उसका एक हाथ घिरा हुआ था। घिरे हुए हाथ में कोई सूखी सी चीज़ लिए थी, जिसपर हज़ारों मक्खियाँ भिनक रही थीं। पूछने पर मेरी माँ ने बताया कि वह उसका मरा बच्चा था और जब तक वह सड़ सड़कर गिर न जायगा बँदरिया उसे छोड़ेगी नहीं।

मैंने पूछा "क्यों" ? मेरी माता के आँसू छलक आये और उन्होंने मेरे सर पर हाथ फेरते हुए कहा "माता की ममता" मैंने और प्रश्न नहीं किया।

(२)

मुहल्ले में नज़दीक ही हुल्ला बाबा का मकान था। हुल्ला बाबा अहीर थे और मुहल्ले भर में उन्हीं के यहाँ से दूध जाता था। छोटे बच्चे उन्हें बाबा कहकर पुकारते थे और वह भी हम लोगों से सहृदयता का सलूक करते थे।

गरीब होते हुए भी मेरी माँ मुझे पाव भर दूध रोज पिलाती थी। कभी कभी हुल्ला बाबा के यहां से आकर कोई न कोई दूध दे जाता और कभी कभी मैं और मेरी माँ खुद जाकर दूध ले आते।

एक दिन सुबह को मैं और मेरी माँ दूध लेने गये। दरवाजे पर पहुँचते ही अन्दर कुछ गुल गपाड़ा सुनाई दिया। अन्दर जाकर देखा तो कुछ लोग एक गाय पर गाली और डंडों की वर्षा कर रहे हैं, पर गाय बाज़ नहीं आती; वह फुंकारती और टांगों को फटकार कर सभी के मिज़ाज को हरा कर रही थी। यह नज़ारा थोड़ी देर तक जारी रहा। अन्त में हुल्ला बाबा की घर वाली आइं। उन्हें हम दादी कहा करते थे। उन्होंने उस मरकही गाय के सामने एक बछड़ा लाकर रख दिया। इसे देखते ही गाय एक दम शान्त हो गई और उसे चाटने लगी। इधर हुल्ला बाबा भी गाय के नज़दीक बैठ कर गर-गर दूध दुहने लगे।

बछड़े को हिलता डुलता न देखकर मैंने माँ से पूछा "यह कैसा बछड़ा है जो टस मस नहीं करता ?" माँ ने उत्तर दिया "यह मरा बच्चा है, इसमें भूसा भर दिया गया है। इसीलिए इसमें कोई सांस डकार नहीं है।" मैंने फिर पूछा "क्या गाय नहीं समझती कि बच्चा बेजान है ?" माँ के फिर आँसू छलक आये और बोली "माता की ममता"

—तरुण

परलोकगत आत्माएँ कैसे सहायता करती हैं ?

(लेखक—परलोकतत्व के आचार्य श्री० वी० डी० ऋषि बम्बई)

परलोक विद्या का प्रचार यद्यपि दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है, किन्तु फिर भी लोग अभी तक इसका उपहास करते हैं और उसकी सत्यता में सन्देह करते हैं। जिन लोगों ने परलोक गत आत्माओं से बात चीत की है, वे जब अपने अनुभव प्रकट करते हैं, तो उचित है कि अविश्वासी लोगों को उन पर विश्वास करना चाहिये। यूरोप और अमेरिका में आज परलोक विद्या-प्रसारक कितनी ही संस्थाएँ हैं, किन्तु भारत जो संसार का आध्यात्मिक गुरु था, वहां परलोक विद्या का उपहास किया जाये, यह कितना आश्चर्य-कारक है, इसे पाठक स्वयं अनुभव करें। हम समय-समय पर अपने अनुभव बताते रहे हैं। साथ ही परलोक विद्या की आवश्यकता पर भी जोर देते रहे हैं। आज हम बम्बई एक पारसी सज्जन श्री पेस्टनजी डी० महालक्ष्मी वाला की पुस्तक में से उनके कुछ अनुभव बताते हैं। यह पुस्तक अङ्गरेजी में लिखी गई है। पुस्तक का नाम है "Adventures in Spiritualism" श्री० महालक्ष्मी वाला लिखते हैं कि सन् १९२१ में मैं अमेरिका गया था, वहां मुझे एक आत्मा का साक्षात्कार हुआ। मैं सेनफ्रान्सिसको में अपने एक पारसी मित्र से मिलने गया था, यह मित्र महाशय अपनी विपरीत स्थिति के कारण शान्त और एकान्त जीवन व्यतीत करते थे। हम दोनों एक मीडियम (माध्यम) के घर गये। माध्यम जब बैठ गई, तो उसने दो तीन चुटकी सूँघनी सूंघी और तुरन्त बेहोश हो गई। इसके थोड़ी देर बाद ही मैंने देखा कि उनके पास एक लम्बा अधेड़ उम्र का अमेरिकन खड़ा है। उसने मेरे पारसी मित्र को सम्बोधन कर कहा—"प्रणाम; अब आप की आँखें कैसी हैं ?" मालूम हुआ कि यह आत्मा एक डाक्टर की थी, जो अपने जीवन काल में आंख के डाक्टर थे और मेरे मित्र की आँखों की चिकित्सा करते थे।

मेरे मित्र ने उन्हें उत्तर दिया—"पहले से अच्छी हैं"

आत्मा ने फिर कहा—"मैंने जो नुसखा दिया है, उसे नियमित रूप से व्यवहार करते रहें। मैं अब भी आपकी चिकित्सा में सहायता किया करता हूँ"

इसके बाद आत्मा ने मेरी ओर संकेत कर पूछा—"आपके सामने कौन बैठे हैं ?"

मेरे मित्र ने उत्तर दिया—'यह मेरे मित्र हैं, बम्बई से आये हैं।"

"मुझे आप से मिल कर प्रसन्नता हुई—कहिये कैसे हैं ?" यह कह कर वह आत्मा विलीन हो गई। इसके थोड़ी देर बाद ही एक पारसी लड़की की आत्मा आई और वह एक स्टूल पर बैठ गई। ५०-६० वर्ष पहले पारसी बच्चे जैसे कपड़े पहना करते थे, वैसे कपड़े वह आत्मा पहने हुई थी। यह लड़की मेरे मित्र की बहन थी। उसने मेरे मित्र को सम्बोधन कर कहा-"भाई, अब आपकी तबियत कैसी है। पिता जी आपके लिये बड़े चिन्तित रहा करते हैं।' मेरे मित्र के पिता ने अपने वसीहतनामे में मित्र को कुछ भी नहीं दिया था। मेरे मित्र ने उत्तर दिया-' पिता जी से कहना कि मेरी चिन्ता न करें।"

लड़की ने फिर कहा—" वे आप की चिन्ता किया करते हैं।" इसके बाद लड़की ने मेरी ओर संकेत कर पूछा—" यह नये आदमी कौन हैं ?"

मेरे मित्र ने उत्तर दिया-"मेरे एक मित्र हैं-"बम्बई से आये हैं।" यह सुनकर उस लड़की ने मुझे पारसी ढङ्ग से नमस्कार किया।

पाठक इस घटना से इतना अवश्य समझ लेंगे, कि मरने के बाद भी आत्माएँ अपने परिजन और इष्ट मित्र, पड़ौसी और ग्राहकों से सम्बन्ध रखती है। उनके दुःख सुख में उनकी सहानुभूति रहती है, यह बात उक्त डाकृर की आत्मा के आगमन से सिद्ध हो जाती है।

आगे यही महाशय लिखते हैं कि सन् १६२५ के सितम्बर मास की ३ री तारीख को मैं एक प्रयोग में बैठा था। एक सादा कागज पर हस्ताक्षर और तारीख डाल कर उसे ट्रम्पेट के पास रख दिया गया। थोड़ी देर बाद ट्रम्पेट से आवाज आई-"महिला और सज्जनो, प्रणाम। मैं इधर से जा रहा था, आप लोगों को यहां देख कर मैं यहाँ आगया हूँ। मेरा नाम है डाकृर पील्वेस।" यह डाकृर सन् १६२२ में परलोक सिधारे थे। आप पर लोक विद्या के बड़े हिमायती थे। इन्होंने अपने जीवन काल में परलोक विद्या सम्बन्धी अनेक पुस्तकें लिखी थीं। मेरी उनसे अमेरिका में लास एञ्जिल नगर में मरने के एक वर्ष पहले भेंट हुई थी। जब उन्होंने अपना नाम डाकृर 'पील्वेस' बताया, तो मैंने उन्हें याद दिलाया, कि आपको मेरे मिलने की याद है? उन्होंने उत्तर में कहा—हां! हां! मुझे याद आता है। आज आप से फिर मिल कर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। अच्छा मैं आपके पास एक चिह्न छोड़ जाऊँगा, जिससे आप जान लेंगे कि मैं डाकृर पील्वेस ही बोल रहा हूँ।" इसके बाद प्रयोग समाप्त हो गया। ट्रम्पेट के पास कागज रखा था, उसे देखा गया, तो उस पर लिखा गया था—

जे० एम० पील्वेस एम० डी०

इसके बाद यह हस्ताक्षर उनको लिखी किताब के चित्र पर जिस पर उनके हस्ताक्षर थे, मिलाया गया। यह हस्ताक्षर बिलकुल उससे मिलते थे, यह महालक्ष्मी वाला की पुस्तक से कुछ अवतरण दिये गये हैं। पाठकों ने सीरो का नाम सुना होगा। यह महाशय सामुद्रिक शास्त्र, हस्तरेखा, शास्त्र के बड़े विद्वान थे। आपने हस्तरेखा के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें लिखी हैं। साथ ही आप ज्योतिष भी जानते थे। आपकी अनेक भविष्य वाणियां सत्य सिद्ध हुईं। आपने एक पुस्तक "True Ghost stories" नामक लिखी है। उसमें उन्होंने लिखा है कि परलोक गत आत्माओं से बात चीत करना केवल संभव ही नहीं है, किन्तु ऐसी बात चीत का व्यवहारिक रूप से भी बड़ा मूल्य है। सन् १८६६ की बात है कि मिस्टर सीरो पश्चिम अमेरिका में यात्रा कर रहे थे, कि उन्हें तार मिला कि 'आपके पिता मरणासन्न हो रहे हैं। शीघ्र आइये, पिता को देखे हुए मिस्टर सीरो को १५ वर्ष हो गये थे। इसलिये तार पाते ही वह इङ्गलैंड के लिये रवाना हो गये। उनके पिता मृत्यु शैय्या पर पड़े हुए अपने पुत्र के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे, पुत्र को देख कर उन्होंने कहा—"बेटा मैं तुम्हीं से बात चीत करने के लिये ही अब तक जीवित हूं। मुझे तुम से परिवार सम्बन्धी कुछ आवश्यक बातें कहनी हैं। यह बातें मुझे बहुत पहले तुम्हें बता देनी चाहिये। देखो कुछ कागजात लन्दन के एक सालिसीटर के पास हैं, उन्हें तुम ले लो। इस समय मुझे सालिसीटर का नाम और पता याद नहीं आता। जरा मेरा सिर ऊँचा करो-शायद याद आ जाये। बेटा, क्षमा करना, मैंने इस काम के लिये बड़ी ढील की। अभी तो मुझे उसका नाम याद नहीं आता।" यह कह कर सीरो के पिता का स्वर्गवास हो गया। थोड़े दिन में यह सब बात विस्मृत हो गई। तीन वर्ष बाद इङ्गलैंड के एक स्टेशन से मिस्टर सीरो कहीं जा रहे थे, किन्तु गाड़ी तीन घण्टे लेट थी। उन्होंने समाचार पत्र में पढ़ा कि

आज सन्ध्या को इसी नगर में परलोक विद्या का प्रयोग होगा, सीरो तुरन्त उस प्रयोग में सम्मिलित होने चले गये। इसके बाद प्रयोग में सीरो के पिता की आत्मा माध्यम के द्वारा बोलने लगी। सीरो ने कहा कि पिताजी मुझे कैसे विश्वास हो, कि आप मेरे पिता हैं। पिता ने कहा— बेटा, आज तुम्हें देख कर मुझे हर्ष हो रहा है। मरने के समय तुम जैसे क्षीण दिखते थे, उससे अब अच्छे दिखाई पड़ते हो। अपनी माता से कहना कि, आज पिताजी से बात की। तुम्हारी बहन परलोक मे अच्छी तरह है। अच्छा अब तुमसे काम की बातें करता हूँ। तुम्हें याद होगा कि जब मैं मृत्यु शैय्या पर पड़ा था तो मेरा गला बन्द हो गया और मैं तुम्हें सालिसीटर का पता नहीं बता सका। तब से मैं यही सोच रहा था, कि तुम्हें उसका पता कैसे बताऊँ। प्रभु का धन्यवाद है, कि उसने आज यह अवसर दिया। अच्छा स्टेण्ड नगर की एक तंग गली में जाना, गली का नाम याद नहीं आता। वहाँ डेबिड एण्ड सन्स सालिसीटर रहते हैं, उन्हीं के पास अपने परिवार के कागजात पत्र हैं। उन्हें तुम लेलो और मुझे इस उपेक्षा के लिये क्षमा करना।" यह कह कर वह आत्मा चली गई। बाद में वह सब कागजात पत्र मिस्टर सीरो को मिल गये। यह परलोक विद्या के अनुभव ऐसे लोगों के हैं जो परलोक विद्या के व्यवसायी नहीं हैं, किन्तु साधारण लोग हैं। यह जब अपना अनुभव इस प्रकार प्रकट करते हैं तब अन्य लोगों को भी उनके अनुभव से लाभ उठाना चाहिये।

'भक्त और साधु बनना चाहिये, कहलाना नहीं चाहिये। जो कहलाने के लिये भक्त बनना चाहते हैं, वे पापों से ठगे जाते हैं, ऐसे लोगों पर सब से पहला आक्रमण दम्भ का होता है।'

'भक्ति अपने सुख के लिये हुआ करती है, दुनियाँ को दिखलाने के लिये नहीं, जहाँ दिखलाने का भाव है वहीं कृत्रिमता है।'

साधकों के कुछ पत्र

सूर्य चिकित्सा बिधि के अनुसार पीड़ितों का उपचार कर रहा हूँ। पांच मास में चार सौ से अधिक रोगी लाभ उठा चुके हैं। छै आना मूल्य की सूर्य चिकित्सा विज्ञान पुस्तक का मूल्य यदि छै हजार रुपया होता तो भी सस्ती थी आपके प्रयत्न का शब्दों द्वारा नहीं, हृदय से हम लोग अभिवादन करते हैं।

—गोबिन्दराम, विधीपुर

पिछले दस वर्षों से मैं आध्यात्म पथ का जिज्ञासु रहा हूँ। सैकड़ों ग्रन्थ पढ़े और अनेक विद्वानों का सत्संग किया परन्तु वाचक ज्ञान के अतिरिक्त आन्तरिक उन्नति कुछ भी न हुई थी। एक मित्र द्वारा आपकी "मैं क्या हूँ ?" पुस्तक मिली। वह मुझे इतनी रुची कि जिस दिन पढ़ी उसी दिन से अभ्यास आरम्भ कर दिया। गत तीन मास में मुझे इतनी शान्ति मिली है, जतनी जीवन भर में प्राप्त नहीं हुई थी।

—डी० पी० भटनागर, सूरत

'परकाया प्रवेश' के अभ्यास से विशेष सफलता मिल रही है। अपने छै मित्रों से तम्बाकू पीना छुड़ा चुका हूं। एक लड़का बुरी सोहबत में पड़ कर अपने स्वास्थ्य को बहुत कुछ बर्बाद कर चुका था, वह सुधर गया। एक व्यक्ति को क्रोध बहुत आता था किसी से उसकी पटती नहीं थी एक महीने के प्रयत्न से उसके विचारों का काया कल्प हो गया है।

—आनन्द गिरि गोस्वामी हरद्वार

स्वप्नदोष और दिल धड़कने का पुराना मर्ज प्राण चिकित्सा विधि में ५६ वें पृष्ठ पर लिखे हुए अभ्यास करने से अच्छा हो गया। दो मास में सिर्फ एक बार धड़कन बढ़ी है जब कि पहले इसका दौरा रोज होता था। स्वप्न दोष तो इन दिनों में एक बार भी नहीं हुआ।

—जीव शङ्कर भिल्लानी, मन्सूरी

कविता कुञ्ज

माधव !

(ले० मास्टर उमादत्त सारस्वत, कविरत्न बिसवां, सीतापुर)

(१)

बढ़ पाप का राज्य गया महि पैं,
ऋषियों के सुकर्म हैं ध्वंस हुये।
शुचि धर्म का अङ्कुश जाता रहा,
नर-नारी सभी हैं नृशंस हुये।
इससे बढ़ क्या परिवर्तन जो,
खल-काग भी उज्ज्वल हंस हुये ?
अब माधव ! आकर रक्षा करो,
बसुधा पै अनेक हैं कंस हुये।

(२)

तब कालिया-नाथना झूठ न है,
मन-चंचल को यदि नाथ सको।
तब जानू सुदामा-कथा सच जो,
इस दीन का भी निभा साथ सको।
सच पांडवों की भी कथा तभी है,
कर जो मुझको भी सनाथ सको।
तब माधव ! मानू तुम्हें सच जो,
भव-सागर में गह हाथ सको।

(३)

तब द्रोपदी की कथा सत्य कहूं,
इन इन्द्रियों की जब लाज बचाओ।
गिरि था जो उठाया कभी तो उठो,
गिरे मानवता का न ताज बचाओ।
कुरु-वंश को मेट बचाया सुधर्म तो,
डूबता देश—जहाज बचाओ।
यदि माधव ! हो वही रक्षक तो,
'अहमन्यता' से प्रभो ! आज बचाओ।

अनुरोध

(कुमारी कमला शर्मा, लश्कर)

रे, मत तोड़ो तुम खिलने दो,
मुझ छोटी सी कलिका को।
बढ़ने दो अय निष्ठुर निर्मम,
कोमल शैशव-लतिका को॥
नव-सुरम्य उपवन में मुझको,
हाँ दो दिन तो रहने दो।
इस अनन्त के नीचे रह कर,
दुःख, अनन्त सुख सहने दो॥
क्षण भंगुर से लघु जीवन को,
पल भर सुखी बनाने दो।
आह ! नष्ट होने के पहिले,
उर उद्गार मिटाने दो॥
सार हीन संसार नहीं कुछ,
लेकर इसका देखूँ मैं।
अरे तोड़ लेना फिर माली,
कुछ हँस लूँ कुछ रोलूँ मैं॥

उस ओर !

(श्रीमती सावित्री देवी तिवारी, जयपुर)

चलो मन, चलो चलें उस ओर !
जहां न अन्तर्द्वन्द्व झमेला, जहाँ न दुख की कोर।
जहाँ सर्वदा शान्ति विराजे, जहाँ न सुखका छोर॥
विश्व वासना का है भूखा, स्वारथ का सब खेल—
इससे बचकर चलें, पार हों, पकड़ प्रेम की डोर॥
इस बुदबुद् से जीवन पर, क्यों यह कोलाहल शोर।
ओ पथगामी, भटक न जाना, देख घटा घनघोर॥
क्यों असार में सार टटोलें, क्यों भ्रम में भरमावें—
सब झूठा है, सच है, केवल नागर नन्द किशोर॥

समालोचना

तरुण—(मासिक पत्र) सम्पादक श्री कृष्ण नन्दन प्रसाद । प्राप्ति स्थान-तरुण कार्यालय, इलाहाबाद । (वार्षिक मूल्य ३) एक प्रति का ।)

पत्र में तरुणों की समस्याओं पर गंभीरता पूर्वक चर्चा की जाती है। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाने योग्य काफी मसाला रहता है। अधिकारी लेखकों की मननीय रचनायें इसमें रहती हैं। छपाई सफाई बहुत ही सुन्दर है।

शक्ति दर्शन—लेखक श्री शंकरलाल तिवारी प्रकाशक, प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह ३० बाई का बाग इलाहाबाद पृष्ठ संख्या १५६ । मूल्य ॥)

पुस्तक में मानसिक विकास और शारीरिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में छोटे छोटे विचार हैं। अनेक विषयों पर थोड़ा थोड़ा प्रकाश डाला गया है। जो लिखा गया है, सुन्दर और पठनीय है।

आनन्दमय जीवन का ह्रास और उसके कारण—लेखक-श्री शङ्करलाल तिवारी सागर । प्रकाशक प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह ३० बाईका बाग इलाहाबाद पृष्ठ संख्या १०४ मूल्य ।≈)

इसमें उपरोक्त पुस्तक की तरह जीवन की गहरी समस्याओं पर स्फुट विचार हैं। लेखक का उत्साह और प्रकाशकों का प्रयत्न सराहनीय हैं। दोनों ही पुस्तकें पृष्ठ संख्या को देखते हुए सस्ती हैं। पाठकों को इन्हें अपनाना चाहिए।

कब्ज या कोष्ठ बद्धता-ले०-डाक्टर बालेश्वर-प्रसाद सिंह, प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह ३० बाई का बाग, इलाहाबाद । प्रकाशक लीडर प्रेस प्रयाग पृष्ठ संख्या ६४ मूल्य ।-) । १० चित्र छपाई सफाई बहुत उत्तम।

डाक्टर बालेश्वर प्रसाद सिंह प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्र के मर्मज्ञ हैं। उनके अनुभवों का यह सार बहुत ही खोज पूर्ण है। आज कल अधिकांश मनुष्य कब्ज से पीड़ित रहते हैं। वे इस पुस्तक में बताये हुए प्राकृतिक उपायों को काम में लावें तो कोष्ठ बद्धता की महाव्याधि से छुटकारा पाकर दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकते हैं। लेखन शैली ऐसी सरल और सुबोध है कि मामूली पढ़े लिखे लोग भी लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक सर्वथा संग्रहणीय और माननीय है।

शरीर से अमर होने का उपाय—लेखक योगिराज मुनीश्वर पं० शिवकुमार शास्त्री। प्रकाशक-ज्ञानशक्ति प्रेस गोरखपुर। पृष्ठ संख्या १७० मूल्य १।।)

पुस्तक में बताया गया है, कि मनुष्य अपनी इच्छानुसार जीवन धारण करता है और इच्छानुसार ही मर जाता है। यदि वह मरना न चाहे तो न मरेगा। अपनी इच्छा शक्ति के बलपर वह शरीर सहित अमर हो सकता है। यदि योगिराज जी के सिद्धान्त व्यवहार रूप भी दृष्टि गोचर होने लगें तो संसार की सारी समस्यायें एक दूसरे ही ढाचों में ढल जावेंगी।

मैस्मेरिजम वा भूत विद्या—लेखक और प्रकाशक उपरोक्त। पृष्ठ संख्या ७२ मूल्य ॥)

करामाती दर्पण, त्रिकालदर्शी अंगूठी, प्लेन चिट, भूत वाहिनी मेज आदि की आड़ में कई वार धूर्त लोग भी अपना उल्लू सीधा कर लेते हैं, पुस्तक में उसकी चर्चा की गई है और बताया गया है, कि मैस्मेरेजम योग का एक बहुत ही छोटा कौतुक है, जिसका आधार इच्छा शक्ति है।

आत्म बल, मनोबल और इच्छा शक्ति—

लेखक और प्रकाशक उपरोक्त। पृष्ठ संख्या ११८ मूल्य १),

इस पुस्तक में ईश्वर, आत्मा, भाग्य, देवता आदि सब का मूल कारण इच्छा शक्ति को ही बताया गया है। अपनी इच्छानुसार मनुष्य चाहे जो कर सकने में स्वतन्त्र है, इस सिद्धान्त का प्रतिपादन खूबी के साथ किया गया है। लेखक के तर्क प्रसंशनीय हैं।